इस पुस्तक में नागा जनजाति का जीवन, उनकी संस्कृति, प्रकृति के साथ उनका
जीवन और संस्कृति में परिवर्तन, परिवर्तन की दशा और दिशा, उनका अपनी मिट्टी
से लगाव आदि विषयों पर एक विचार प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक सहभागी अ
लिखी गयी है। यह आंखों देखी है। नागा समाज, विशेष रूप से युवा किस
मुख्यधारा से अपने को जोड़ते हैं और उस पर उनकी सोच का चिंतन है। इसमें लो
संस्कृति पर उनके विचार, सभी कुछ उस नजरिये से लिखने का प्रयास किया गया है
हैं, जिस अवस्था में वे रहते हैं और जैसा वे करते हैं।

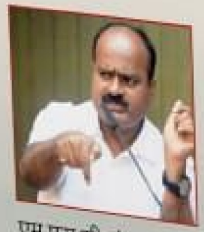

डॉ. कैलाश कुमार मिश्र
संपर्क: बी–2/333, तारा नगर, ओल्ड पालम रोड, कक
सेक्टर 15, द्वारका, नई दिल्ली 110078
मोबाइल नंबर: 8076208498
ईमेल: kailashkmishra@gmail.com

एम एस सी (मानव विज्ञान), एम ए (मानवाधिकार), डिप्लोमा (पब्लिक एडमिनिस्ट्रेश
(आर्ट एप्रिसिएशन), एम फिल (I-मानव विज्ञान), पी एच डी (सामाजिक मानव वि

- रिसर्च एसोसिएट: साउथ साउथ सोलिडरिटी (कनाडा)
- रिसर्च इन्वेस्टिगेटर: पापुलेशन जेनेटिक्नेस एंड ह्यूमन डेवलपमेंट विभाग – ने
  ऑफ हेल्थ एंड फैमिली वेलफेयर (स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत स
- रिसर्च एसोसिएट: सोसाइटी फॉर हेल्थ एजुकेशन एंड लर्निंग पैकेज (HELP)
- रिसर्च ऑफिसर: इंदिरा गांधी नेशनल सेंटर फॉर दी आर्ट्स (संस्कृति मंत्रालय, भार
- कंसलटेंट: READ INDIA (READ GLOBAL का भारतीय संकल्प)

इसके अतिरिक्त यूनेस्को, यूएनडीपी, रीड ग्लोबल, रीड इंडिया, ललित कला
सरकार), मैथिली भोजपुरी अकादमी (दिल्ली सरकार) आदि के साथ अनेक परियोजन
नीतिगत कार्य करने का अनुभव, वर्ल्ड बैंक (IPP 8), गुरु गोबिंद सिंह इंद्रप्रस्थ यूनिवर
आई पी एल एम, रीड कनेक्ट काउंसिल (सेक्शन 8 कंपनी) का फाउंडर डायरेक्टर।
भारतीय आदिवासी, लोक, लोक जीवन, कला, मानवाधिकार, आदि पर कार्य, पूर्वोत्त
संस्कृति और जनजीवन पर गहन अध्ययन और उसका कोऑर्डिनेटर।
जन्म: 8 फरवरी 1967

PEN TO PRINT PUBLISHING LLP
Ground Floor, WZ-911/2, Shankarlal Street
Ring Road, Naraina, New Delhi 110 028
E-mail: pen2print.publishing@gmail.com
Mob.: +91-98680-29307 / +91-70119-49570
JOIN US ON OUR SOCIAL MEDIA PLATFORMS

MRP ₹199 (
ISBN: 978-

नागा अस्मिता प्रकृति और संस्कृति डॉ. कैलाश कुमार मिश्र

नागा अस्मिता

प्रकृति और संस्कृति

डॉ. कैलाश कुमार मिश्र

नागा अस्मिता:

प्रकृति और संस्कृति

नागा अस्मिता:
प्रकृति और संस्कृति

डॉ. कैलाश कुमार मिश्र

PEN TO PRINT PUBLISHING
New Delhi

Copyright © Kailash Kumar Mishra, 2025

First published, 2025

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopying, recording, or any information storage or retrieval system, without prior permission in writing from the publishers.

No responsibility for loss caused to any individual or organisation acting on or refraining from action as a result of the material in this publication can be accepted by Pen to Print Publishing or the Editors.

The publisher believes that the content of this book does not violate any existing copyright/intellectual property of others in any manner whatsoever. However, in case any source has not been duly attributed, the publisher may be notified in writing for necessary action.

ISBN: 978-93-92877-51-3 (PB), 978-93-92877-32-2 (HB)
2 4 6 8 10 9 7 5 3 1

Pen to Print Publishing LLP
WZ-911/2, Shankarlal Street, Ring Road
Naraina, New Delhi – 110028
E-mail: pen2print.publishing@gmail.com
Mob.: +91-98680-29307 / +91-70119-49570

Typeset & design by
Pen to Print Publishing, New Delhi

Printed and bound in New Delhi, India

प्रिय मित्र मानस पाल, जिन्हें पुस्तक के प्रकाशन से दो महीने पूर्व कैंसर ने हमसे सदा के लिए छीन लिया।

मानस, तुम्हारी यादें हमेशा मेरे साथ रहेंगी।
तुम्हारी मित्रता और सहयोग ने मेरे जीवन को समृद्ध बनाया।
यह पुस्तक तुम्हारी स्मृति में समर्पित है।

– डॉ. कैलाश कुमार मिश्र

वषय-सूची

आभार ix

प्रकाशक संदेश xi

1. लोक और प्रकृति में प्रवेश 1

2. भोजन, वस्त्र और आभूषण 14

3. अनुभव और रोमांच 22

4. प्रकृति संतति 34

5. हॉर्नबिल उत्सव 41

6. भैषज्य नमक और च कत्सा 55

7. नागा मोरुंग: यूथ डारमेट्री 69

8. बाँस, बेंत और काष्ठकला 87

9. नागा प्रेमी और नागा और मैतेई का प्रेम ववाह 103

10. सरकारी कार्य, प्रोटोकॉल एवं अवसरवादिता 113

11. एसटीडी से जूझती म णपुर की महिलाएँ: मरने से पहले जीने की तमन्ना 124

12. पूर्वोत्तरी – स्पिरिट ऑफ नार्थ-ईस्ट 133

13. संगाईप्रो – म णपुर के काबुई नागा का व शष्ट गाँव 149

14. **नॉर्थ** कछार हिल्स: भारत का एक और स्वर्ग 156

15. रानी ग़ैदिनल्यू और हरेका आन्दोलन: नागा अस्मिता के लए संघर्ष 170

आभार

जो भी कहना था, वह मैंने इस पुस्तक में व्यक्त कर दिया है। नागा समुदाय के लोग निस्संदेह रोमांचक, खूबसूरत, दिलेर, मस्त और स्वस्थ होते हैं। उनकी अपनी धरती, लोग और संस्कृति के प्रति गहरी मोहब्बत है। वे अपनी निजता को बहुत महत्व देते हैं। लगता है क हम उन्हें समझने में कहीं न कहीं चूक कर रहे हैं। क्यों? शायद अपने अहंकार के कारण।

कुछ बातें ऐसी हैं जिन्हें हमें सत्य की तरह कहना चाहिए, बिना कसी लाग-लपेट के। कई बार हम पॉ लटिकली करेक्ट होने के चक्कर में सत्य और प्रामा णक तथ्यों को पीछे छोड़ देते हैं, जो क घातक हो सकता है।

इस पुस्तक में कुछ बातें रह गई हैं, जिन्हें मैं अगली पुस्तक में साझा करूँगा। मैंने ईमानदारी से अपने अनुभव और अवलोकन को शब्दों में परोया है। यह पुस्तक कताबी ज्ञान नहीं, बल्कि अनुभव का जीवंत प्रमाण है। इसमें जो अच्छा है, वह नागा समुदाय की देन है और अगर कुछ गलत है, तो उसकी जिम्मेदारी मेरी है। मैं अपनी गलतियों को वनम्रतापूर्वक स्वीकार करता हूँ।

इस कार्य को करना आसान नहीं था, ले कन लोगों के प्रेम और सहयोग से यह संभव हो पाया। मैं कुछ लोगों का व्यक्तिगत रूप से आभार व्यक्त करना चाहता हूँ:

1. डॉ. कल्याण कुमार चक्रवर्ती, भूतपूर्व सदस्य स चव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली
2. श्री अजय नारायण झा, भूतपूर्व स चव, वत्त मंत्रालय, भारत सरकार
3. श्री पी. झा, निदेशक, कल्चरल इन्फार्मेटिक्स लेबोरेटरी (CIL), इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली
4. डॉ. ऋचा नेगी, शोध अ धकारी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली
5. श्री गौतम शर्मा (अब स्वर्गीय), भूतपूर्व स चव, श्रीमंत शंकरदेव कलाक्षेत्र, गुवाहाटी, असम
6. अनेक नागा युवक, बुजुर्ग, महिला, पुरुष और स्थानीय अ धकारी
7. अनुजवत श्री ल लत कुमार जी, जिन्होंने इस पुस्तक को छापने में मदद की
8. श्री प्रवीण भारद्वाज, जिन्होंने प्रूफ री डंग और भाषा संपादन में सहयोग दिया
9. मेरी पत्नी पूनम और पुत्र शशांक, जिन्होंने मुझे घर के सभी कार्यों से मुक्त रखा।

शुभम भूयात!

– डॉ. कैलाश कुमार मश्र

प्रकाशक संदेश

हमें यह घोषणा करते हुए अत्यंत गर्व और हर्ष हो रहा है क प्रतिष्ठित मानव वज्ञानी एवं सांस्कृतिक चन्तक डॉ. कैलाश कुमार मश्र द्वारा र चत शोधपरक ग्रंथ "नागा अस्मिता: प्रकृति और संस्कृति" अब पाठकों के हाथों में है। इस महत्वपूर्ण कृति का अंग्रेज़ी संस्करण भी शीघ्र ही प्रका शत कया जाएगा।

यह पुस्तक नागा समाज की सांस्कृतिक पहचान, उनके जीवन-मूल्य, प्रकृति के साथ उनके आत्मीय संबंध और समकालीन सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन के बीच उनके अनुभवों का गहन अन्वेषण प्रस्तुत करती है। सहभागी अवलोकन की पद्धति के माध्यम से डॉ. मश्र ने नागा युवाओं और समुदाय की भारत की व्यापक राष्ट्रीय पहचान से जटिल अंतः क्रया को प्रत्यक्ष, संवेदनशील और ववेचनात्मक दृष्टिकोण से उजागर कया है।

डॉ. मश्र का लेखन न केवल एक सूक्ष्म नृवंश वज्ञानी दस्तावेज है, बल्कि यह उन गूढ प्रश्नों का भी उत्तर खोजता है क नागा आदिवासी के लोग अपनी संस्कृति को कैसे परिभा षत करते हैं, अपने परिवेश से कैसे जुड़ते हैं, और बदलते समय के साथ कस प्रकार अनुकूलन और प्रतिरोध के रास्ते तलाशते हैं।

यह कृति निःसंदेह उन सभी पाठकों के लए एक अनमोल स्रोत सद्ध होगी जो पूर्वोत्तर भारत की स्वदेशी

संस्कृतियों में रुच रखते हैं, चाहे वे वद्वान हों, शोधार्थी, नीति-निर्माता या जिज्ञासु।

एक बार पुनः आभार।

– **पेन टु प्रिंट पब्लिशिंग**

1

लोक और प्रकृति में प्रवेश

— **भाग** 1 —

उत्तर-पूर्व भारत से मेरा आत्मिक लगाव रहा है। कभी यह नहीं लगा कि मैं इस धरती और यहाँ के लोगों के लिए बाहरी व्यक्ति हूँ। सदैव स्थानीय व्यक्ति के रूप में ही अपने आपको मैंने देखा है और यहाँ के लोगों ने भी मुझे ऐसा ही प्यार दिया है। मैंने उत्तर-पूर्व भारत में लगभग सात साल तक लगातार कार्य किया है और ऐसा लगा कि इनके जीवन व प्रकृति वैविध्य, संस्कृति और प्राकृतिक अंशों के तारतम्य का एक फ़ीसदी भी नहीं जान सका हूँ। जब आप उत्तर-पूर्व भारत की बात करते हैं तो इसके साथ सिक्किम भी समा जाता है। बाक़ी सात राज्यों में असम, मणिपुर, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिज़ोरम और त्रिपुरा तो है ही। मैं जितना इनको समझता गया अपनी अज्ञानता पर उतना ही कोफ्त होता गया। मुझे हमेशा लगा कि भारत-भूमि की इस महत्वपूर्ण धरा पर बहुत कुछ है और यहां बहुत कुछ किया जा सकता है। अगर कुछ न भी करें, तो अपनी जानकारी को नित नया कर सकते हैं और बढ़ा सकते हैं।

मैंने नागालैंड के बारे में अनेक लोगों से अनेकों प्रसंग सुन रखे थे। जब यहाँ आया तो मुझे ऐसा लगा कि उन प्रसंगों को लोगों ने गलत तरीके से अथवा अपनी अज्ञानता को प्रदर्शित करते हुए

चटखारे लगाकर लिखा **या बताया** है। सच कहूँ तो मैंने उपनिषद् की परम्परा के एक ऐसे शिष्य की तरह उत्तर-पूर्व भारत के लोगों से उनके बारे में जानने का प्रयास किया है, जो बिलकुल शून्य अथवा अविद्या की अवस्था में हैं। स्मरण रहे वह शिष्य जाग्रत है, कुशाग्र है। वह जानना चाहता है। ज्ञान को कतरे-कतरे में समझना चाहता है। ज्ञान को प्रमाण के साथ उस गुरु से समझना चाहता है जो उस व्यवस्था का सर्वोत्तम ज्ञाता है। वह उनके साथ रहकर उनके परिवेश को समझना चाहता है। उनके कथ्य को जीवन में लोग कैसे साकार करते हैं, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखना चाहता है। यह कार्य कठिन अवश्य था, लेकिन असंभव नहीं। मैं कितना जान पाया, इसे तो नहीं जानता, लेकिन जितना भी समझा वह प्रमाणिक था। उसको डंके की चोट पर बोल सकता हूँ और लिख सकता हूँ। यह लेखन इसी बात का प्रमाण है।

आप मेरे साथ यात्रा करें। मैं ईमानदारी के साथ आपको उत्तर-पूर्व के लोगों की जीवन, संस्कृति, प्राकृतिक परिवेश से पल-पल परिचय करवाता जाऊँगा। यहाँ जो कुछ है वह सत्य है, प्रामाणिक है, **आँखों** देखी है, किताबी कुछ भी नहीं है। आप अब मेरे साथ यात्रा करने के लिए तैयार हो जाइये।

×××

चलिए, शुरुआत नागा संस्कृति से करते हैं। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि जब हम नागा संस्कृति की बात करते हैं तो केवल नागालैंड तक अपनी बात सीमित नहीं रख सकते। मैं कहता चलूँ कि नागालैंड के अलावा मणिपुर की 23 प्रतिशत जनसँख्या

नागा जनजातियों की है। इसके अलावा नागा असम, अरुणाचल और मिज़ोरम में भी रहते हैं। म्यान्मार में भी इनकी अच्छी-खासी जनसँख्या है।

मैं 2007 में नागालैंड की राजधानी कोहिमा में एक होटल में एक संभ्रांत नागा युवक से बात कर रहा था। युवक कोन्याक नागा समुदाय से था। राजकीय प्रशासनिक अधिकारी था। उसे नागालैंड, नागा और समस्त उत्तर-पूर्वी भारत की चिंता थी। वे संस्कृति की संरक्षण के लिए, पारिस्थितिकी संतुलन के लिए, प्राकृतिक संसाधन का क्षय रोकने के लिए और सबसे अधिक नागा समाज, जो प्रकृति और संस्कृति के बीच अपना जड़ और जुड़ाव खोता जा रहा है उसकी पुनर्स्थापना के लिए चिंतित थे। उसके मन का युवा अपने अस्तित्व की संरक्षण के लिए द्वंद्व झेल रहा था। युवामन विचलित हो रहा था।

वे महोदय कुछ ही क्षण के परिचय के उपरान्त मुझसे घुल-मिल गए थे। चावल से निर्मित स्थानीय बीयर इस मिलन का प्राणवायु बन चुका था। यद्यपि वे जो भी बात और तर्क कर रहे थे, उसमें कहीं से भी लीक से हटकर कुछ नहीं बोल रहे थे। भावनाएं स्वच्छंद होते हुए भी जड़ों से जुड़ी हुई थीं।

युवक ने बताया: "जानते हैं सर, गलती तो हमारे नागा पूर्वजों ने इस राज्य के नामकरण के समय **ही कर ली थी**। कहिए, भला एक तरफ आपने नाम रखा मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, मणिपुर जो हर दृष्टिकोण से भारतीय मुख्यधारा का अभिन्न अंग लगता है, दिखता है। वहीं हमारे राज्य का नाम नागालैंड बना दिया गया। इसमें भारतीयता कहां है? हम तो नामकरण में हॉलैंड,

इंग्लैंड, स्विटजरलैंड की तरह लगते हैं। बिलकुल एक अलग-थलग-सा राज्य। हमें भी अपना नाम नागा प्रदेश, नागांचल, नागभूमि, नागमणि जैसा रखना था। अगर ऐसा होता तो हम भारतीय मुख्यधारा के करीब होते, भारतीय मुख्यधारा के लोग भी हम लोगों से सांस्कृतिक रूप से जुड़ पाते। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। अगर शहरों के नाम बदल सकते हैं तो राज्य का नाम क्यों **नहीं बदला जा** सकता? यह गंभीर विषय है, जिस पर सरकार और यहां की जनता को जागरूक होने की आवश्यकता है। लोग सोचने भी लगे हैं। **हमें** इसके लिए गांव-गांव घूमकर लोगों को जागरूक करना है।"

नागा युवक गंभीर होते हुए पुनः बोलने लगे: "क्रिश्चियन मिशन और स्कूलों ने तो हमारा बंटाधार कर दिया है, सर। शिक्षा और आधुनिकता के बहाने इन लोगों ने हम लोगों को अपनी संस्कृति की जड़ों से अलग-थलग कर दिया है। ठीक है, हम बाल दूसरे अंदाज में रखते थे, आधुनिक वस्त्र धारण नहीं करते थे, लेकिन हम प्रकृति के काफी करीब होते थे। दुर्भाग्य से मिशन स्कूलों ने हमें अंग्रेजी तो सिखा दिया, लेकिन अपनी भाषा और संस्कृति से अलग-थलग कर दिया। हम ईसाई धर्म में परिवर्तित होते गए और अपने ग्राम देवता, कुल देवता, कृषि देवता, मातृ देवता, औषधि देवता को भूलते चले गए। हमने प्रकृति-पूजा छोड़ **दी** है और चर्च में पेंट-शर्ट पहनकर जाने लगे **हैं**। हम अपनी धरती, नदियों, झरने, लोकगाथाओं, प्रकृति पूजा के मंत्र भूलने लगे **हैं** और न्यू टेस्टामेंट को याद करने लगे **हैं**। हम अपनी मधुर वाणी और संगीत को छोड़कर अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य धुनों में गाना गाने लगे **हैं** और उसकी धुन बजाने लगे **हैं**। सच कहूं तो हम लोग अपने को ठगा-सा महसूस

करते हैं। दुर्भाग्य से वामपंथी विचारधारा के लोग हमारी भावना को नहीं समझते। विचारधाराएं और कुत्सित मानसिकता उन्हें हमारे लिए स्वर उठाने नहीं देते। कौन सुनेगा भला हमारी? लगभग 97 प्रतिशत नागा समुदाय ईसाई बन चुके हैं। लेकिन रुकिए सर! 3 प्रतिशत अभी भी मूल परम्परा में है। हमें उनके साथ रहकर अपनी जड़ों को तलाशना है। हम अंग्रेजी अथवा ईसाई धर्म के विरोधी नहीं हैं, हमें तो अपनी संस्कृति और भाषा के साथ अपनी प्रकृति को पुनः जोड़ने की जरूरत है। अगर ऐसा कर पाते हैं तो यही 'स्पिरिट ऑफ नागा' और 'स्पिरिट ऑफ नागालैंड' होगा।"

युवक भावुक हो रहा था लेकिन बात तर्कपूर्ण कर रहा था। ऐसे में, अगर कोई घर वापसी की बात करता है तो क्या बुरा करता है। युवक के साथ अन्य प्रसंग पर भी चर्चा करेंगे। अभी इतना ही।

— भाग 2 —

मुझे ऐसा लग रहा था कि मानो वह नागा युवक अपने खोए अतीत को येन-केन-प्रकारेण वापस लाना चाहता था। जेफू होटल के रूम में बैठे हुए अब हम लोगों को ठंड का एहसास हो रहा था। सुलगती लकड़ी के पास आकर बैठ गए। बातों का सिलसिला जारी था। नागालैंड का **ठंडा मौसम झेलना काफी** कठिन होता है। यहां ड्राई कोल्ड है। दिसम्बर-जनवरी तो और खतरनाक होता है। अगर आप बाहर से हैं, तो इन दिनों यहां आने के बाद जरा सावधान रहिए। हो सकता है कि यह ठंड आपको पछाड़ दे। बहुत दिनों तक बीमार रह सकते हैं। मांस-मछली का भोजन, स्थानीय मिर्च, जिसको लेंका या

लंका या जोलकिया कहते हैं, का मसाला, आचार, सलाद आदि के रूप में सेवन, देसी हल्दी, धनिया, अदरक का सेवन आपको इससे बचने में सहायक हो सकता है। अभी पिछले बीस वर्षों से नागालैंड में लोगों ने संतरे की खेती बृहत् रूप से **करनी** शुरू कर **दी** है।

संतरा और अनानास आपको यथेष्ट रूप में मिलेगा। एक नागा लड़की जिमी नागा परिवार से थी। वह अपूर्व सुंदरी थी। कोहिमा विधि महाविद्यालय से एल एल बी कर रही थी। पाक कला में निपुण थी। मेरे आगमन के पहले दिन ही मुझे मेरे मित्र श्री गौतम शर्मा जो कि उन दिनों गौहाटी के श्रीमंत शंकरदेव कलाक्षेत्र के सचिव थे, ने मेरा परिचय इस नागा लड़की और अन्य 20 नागा लड़की और लड़कों से करवाया था। मुझे उन लोगों के माध्यम से सभी नागा जनजातियों के स्त्री-पुरुष एवं बड़े बुजुर्गों से उनकी संस्कृति, लोक इतिहास, देवता, अनुष्ठान, रीति-रिवाज, राजनीति, प्रकृति के साथ उनका तारतम्य समझना था। सभी युवक और युवती कुछ ही घंटों में मुझसे घुल-मिल गए थे। उनको अपने बारे में, अपनी जनजाति के बारे में, अपनी परम्परा, अपने लोक आख्यान के बारे में प्रथम बार बोलने का अवसर मेरे द्वारा दिया गया था। मैं उनके माध्यम से नागा कस्टमरी लॉ, राजनीति, लोक-संस्कार आदि को समझना चाहता था। मैं नागा आदिवासियों से उनके बारे में, उन्हीं लोगों के मुंह से सुनना चाहता था, उनसे जानना-समझना चाहता था, जिसका उनके जीवन-यापन में परिवर्तन के कारण आज के बदलते परिवेश में परिवर्तन आए हैं। सभी लोग उत्साहित थे। कह भी रहे थे: "मिश्र सर, आज तक हम लोगों ने इसके ऊपर काम करना तो

दूर इसके बारे में कायदे से सोचा भी नहीं था। आपने हमें अपने-आपको समझने का अवसर दिया है।”

दस्तावेजीकरण का काम ईमानदारी से हो, इस बात का ध्यान रखते हुए मैंने अलग-अलग नागा समुदाय में काम करने के लिए एक युवक और एक युवती का चयन किया था।

कोहिमा में संतरे का रस बहुत सस्ते में उपलब्ध था। शायद पांच रुपए में एक ग्लास। मैंने सुबह ही लगभग खाली पेट चार ग्लास संतरे का रस पी लिया। एक बंगाली मित्र इस पर बिफर पड़े। कहने लगे, "अरे डॉक्टर साहब, यह क्या कर रहे हैं आप! खाली पेट संतरे का रस पीना किडनी को बरबाद करने जैसा है। पहले कुछ खा लीजिए, फिर पीते रहिए, संतरे का रस जितना पीना है। मेरी समस्या यह थी कि ना तो मैं सुअर का मांस खाता था, न गोमांस, न ही कुत्ते-बिल्ली का। नागालैंड में होने का मतलब था कि आपके खा**ने** में कुछ-न-कुछ मांस तो मिलेगा ही। फिर क्या करूं? तो हमारी रक्षा के लिए आगे आई वही खूबसूरत बनबाला जिमी नागा नायिका। बोली: "सर, आप बताओ क्या खाएंगे?"

मैने कह दिया: "ठीक है, मुर्गा बना दो। चावल के साथ खा लूंगा। सलाद तो मिल ही जायेगा।"

वह लड़की बड़े उत्साह से खाना बनाने लगी। मेरे लिए मुर्गा पका रही थी। मुर्गे के मांस में देशी कच्ची हल्दी, अदरख, बाँस के पल्प, स्थानीय लंका एवं स्थानीय जड़ी-बूटी सिल**बट्टे** पर पीसकर डाल रही थी। मांस के अंदर कुछ साग और सब्जी भी मिला रही थी। कुल मिलाकर कुछ देर बाद ही मैं पकते हुए भोजन की सुगंध को हवा में अनुभव करने लगा। वह सुगं**ध** या अरोमा नाक को स्वर्गिक

अनुभूति दे रहा था। लग रहा था, "आज उत्तम देशी भोजन करूंगा। नागा चावल से पके भात पहले भी असम और मणिपुर में खा चुका था, अतः स्वाद को समझ सकता था। सभी सोच दिवास्वप्न की तरह तब भंग हो गए जब मेरी महिला मित्र मेरे पास हांफते आई और बिना रुके बोलने लगी: "अरे के के! यह क्या खाने जा रहे हो। तुमको मालूम है, वह लड़की जो खाना पका रही है, एक ही कलछुल से मुर्गे की हांडी को चला रही है और उसी कलछुल से दूसरे चूल्हे पर पक रहे बिल्ली की मीट को भी चला रही है।"

मेरी महिला मित्र ने इस तरह मेरे मुर्गा-चावल खाने के ख्वाब को विखंडित कर दिया। इतना जरूर हुआ कि मैं पुनः होटल जेफू आ गया। वहां कम-से-कम चावल, दाल, सब्जी-रोटी मिलने में कोई दिक्कत नहीं थी। मन-ही-मन यह भी ठान लिया कि अब कभी भी नागालैंड में नॉनवेज नहीं खाऊंगा।

बात पुनः उसी नागा युवक की करता हूँ। वह बात करते-करते थक गया था। उसने अपने लिए ड्राई रोस्टेड चिकन साथ में रखा हुआ था। उसने उसे निकाला और खाने लगा। देशी बीयर भी पीने लगा। मुझे इस पर किसी तरह का एतराज नहीं था। बल्कि इस बार वह एक ग्लास चावल का बीयर मेरे लिए भी निकाल चुका था। मैंने अपने बैग से काजू निकालकर उसके साथ बीयर धीरे-धीरे पीना शुरू किया।

कुछ ही देर के बाद वह युवक फिर अपनी बात कहने लगा: "जानते हैं सर! हम लोगों के लिए नागा कोई शब्द नहीं है। नागा एक अनेक समूह के आदिवासियों का नामकरण है जिसका भ्रामक इतिहास है। हम लोग अर्थात हमारे पूर्वज बहुत ही मस्त और

उछल-कूद करने वाले लोग थे। मस्ती में रहना, वीरता के गुण को प्रदर्शित करना उनके लक्षण थे। उनके इस व्यवहार से असम के लोगों ने उनको "नंगा आसे" कहना शुरू किया। अर्थात ये लोग नंग-धरंग हैं, उपद्रवी हैं। फिर क्या था, पूरे समूह के लिए एक शब्द मिल गया। हम लोग नागा बन गए। आज हम लोग इसी नामकरण को स्वीकार करते हैं और अपने आपको गर्वित अनुभव करते हैं। लेकिन नागा से जो नागालैंड बन गया, वह ठीक नहीं हुआ सर।"

नागा युवक के साथ मैं भी मानो उसी के समुदाय का सदस्य बन गया था। वह जो बोल रहा था, उसे मैं समझ पा रहा था।

— भाग 3 —

नागा युवक के अनुसार नागा समुदाय के अंतर्गत यों तो चालीस से भी अधिक जनजातियां आती हैं, परंतु उनमें से 19 प्रमुख हैं जिनका नाम निम्नलिखित है:

1. अंगामी नागा
2. आओ नागा
3. चांग नागा
4. कोन्याक नागा
5. मरम नागा
6. संगटम नागा
7. तुत्सा नागा
8. सुमी नागा
9. वांचू नागा

10. फोम नागा
11. पोचुरी नागा
12. संगमा नागा
13. सूमी नागा
14. चखेसंग नागा
16. लोथा नागा
17. रियांग नागा
18. काबूइ नागा
19. जिमी ये जेमी नागा

एक दिलचस्प बात यह है कि इन सभी जनजातियों के लोग अलग-अलग अपनी भाषा बोलते हैं। एक आदिवासी की भाषा दूसरे नहीं समझ पाते। आज से करीब 70 साल पहले एक प्रसिद्ध मानवविज्ञानी नागा समाज पर कार्य कर रहे थे। उन्होंने एक-एक नागा उपसमूह से मिर्ची का नाम बताने के लिए कहा। 16 समुदाय के प्रतिनिधियों ने मिर्च के 16 अलग-अलग नाम बताए, जिस नाम से दूसरे नागा समुदाय के लोग परिचित ही नहीं थे। इस समस्या को दूर करने के लिए और नागा समुदाय के विभिन्न उपसमुदायों को आपस में वार्तालाप करने लायक बनाने के लिए असमिया भाषा को केंद्रबिंदु मानते हुए असमिया और अनेक नागा समुदायों की भाषा को मिलाकर एक संपर्क या संचार या कम्युनिकेशन की भाषा का निर्माण किया गया जो बाजार, व्यापार, दैनिक जीवन का हिस्सा बन गया। इस भाषा का नाम 'नागामीज' रखा गया। नागामीज के रूप में इस तरह से नागा जनजातियों को एक संपर्क या लिंक भाषा मिल गया।

हम लोग अभी बात कर ही रहे थे कि कहीं से एक कुत्ते के रोने की आवाज मेरे **कानों** तक सुनाई **दी**। मैं **उसके** रोने में अकुलाहट और बंधन का स्पष्ट अनुभव महसूस कर रहा था। मैंने उस युवक से पूछा: "यह कुत्ता ऐसा क्यों रो रहा है?"

युवक एक मिनट के लिए चुप हो गया। फिर कुटिल मुस्कान के साथ बोला: "इसको छड़ी से पीटा जा रहा है, इसीलिए।"

मैंने पूछा: "क्यों?"

युवक बोला: "इसीलिए कि इसका शिकार किया जा रहा है। इसको भात खिला दिया गया है। फिर इसको बांधकर उलटा लटका दिया गया है। अब इसको छड़ी से पीटा जा रहा है। कुछ देर के बाद इसको आग में पकाया जायेगा। पूरे शरीर को रोस्ट कर दिया जाएगा और तब इसके आंत को निकालकर पहले उसे खाया जायेगा। आंत में जो भात भरा है, वह भूने होने के कारण अलग ही तरह का स्वादिष्ट भोजन होगा। हम लोग मांस को अपने मुख्य घर के मध्य टांग देते हैं। वहां लकड़ी जलती रहती है और उस धुएं और अग्नि **की** तपिश से मांस सौंधा होता रहता है। सड़ता अथवा गलता नहीं है। खाना बनाते समय जब जितना चाहिए, निकाल लेते हैं।"

युवक जब यह विवरण दे रहा था तो मेरा चंचल मन मणिपुर स्थित एक काबुई नागा गांव का स्मरण करने लगा। मैं मणिपुर के एक काबुई नागा गांव गया हुआ था। दरअसल एक नागा रिसर्च स्कॉलर मेरे लिए रिसर्च असिस्टेंट का कार्य कर रही थी। मैं उस नागा गांव का बेसलाइन सर्वे कर रहा था। शोध और सर्वे के कार्य में प्रगति को देखने और निरीक्षण के लिए मैं वहां पहुंचा। मेरी रिसर्च असिस्टेंट उसी गांव से थी और नागा थी। दिन भर काम करने के

बाद वह मुझे अपने घर आने के लिए बहुत ही आत्मीयता से कहने लगी। मैं उसके निवेदन का सम्मान करते हुए उसके घर की ओर चल पड़ा। उसके घर पर उसके माता-पिता के साथ-साथ पितामह भी थे। पितामह लगभग 85 साल के थे, **जो कि** अपने जमाने के स्नातक थे। भारत सरकार में किसी पद पर कार्यरत रहे थे। **उन्होंने** बहुत दिनों तक पटना में रहकर **भी** नौकरी की **थी**। मेरे नाम के साथ मिश्र देखते ही बोले: "आप मैथिल ब्राह्मण हैं ना!"

मैं बोला: "जी।"

उन्होंने इशारे से अपनी पोती को **कहा** कि मुख्य घर में अगरबत्ती और धूप जला दिया जाए। देखते ही देखते अगरबत्ती और धूप जला दिया गया है। मुझे यद्यपि अगरबत्ती से समस्या है। मैं खांसने लगा और निवेदन किया कि धूप और अगरबत्ती को बुझा दिया जाए। मेरे निवेदन पर धूप और अगरबत्ती को बुझा दिया गया। नागा बुजुर्ग कहने लगे: "मिश्रा साहब आप लोग ब्राह्मण हैं। मांस-मदिरा नहीं खाते हैं। हमारे नागा में कोई भी भोजन बिना मांस के नहीं होता। हम लोग एक बार में बहुत सारा मांस अपने घर के चूल्हे के ऊपर रख देते हैं। अग्नि के धुएं और तपिश से वह मांस पकता रहता है और सौंधा होता रहता है। जब जितना चाहिए निकाल लेते हैं। अभी पांच दिन से बछड़े का मांस रखा हुआ है। मुझे लगा आप इस गंध को बर्दाश्त नहीं कर पायेंगे।"

मैंने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया: "कोई बात नहीं। यद्यपि मैं गोमांस और कुत्ते का मांस नहीं खाता, तथापि मुझे इससे कोई घृणा नहीं है। मैं आपके साथ सहज अनुभव कर रहा हूँ।"

पुनः मणिपुर से नागालैंड आता हूँ और अपने नागा युवक मित्र के साथ आपको वार्ता की कड़ी से जोड़ता हूँ। मैंने नागा युवक से पूछा: "आप बताएं कि आप लोग कुत्ते में मांस में क्या विशेषता ढूंढते हैं?"

युवक बोलने लगा: "यह मांस स्वाद में बहुत उत्कृष्ट नहीं होता, लेकिन खाने के बाद युवकों में जोश और स्फूर्ति भर देता है। मैंने बहुत **दिनों** तक कुत्ते का मांस खाना छोड़ दिया था। संयोग से मेरी प्रेमिका जो बाद में मेरी पत्नी और मेरे दो बच्चों की माँ बनी, एक दिन मुझसे बोली: "मैं तुम्हारे पुरुषार्थ की परीक्षा लेना चाहती हूँ। मेरी इच्छा है कि तुम एक कुत्ते को पकड़ कर उसका मांस अपने हाथों से तैयार करो। मुझे पाने के लिए, मेरा प्रेम और सब कुछ पाने के लिए **तुम्हें** मेरी शर्त स्वीकार करनी ही **होगी**।"

इतना कहने के बाद नागा युवक कुछ देर के लिए रुका। मैं आश्चर्यचकित होकर इस युवक को सुनता रहा। आगे भी सुनने का कौतूहल तो था ही। युवक रुका। तनिक रोमांच में आया, फिर बोल पड़ा। कहने लगा: "फिर क्या था। मैंने इस चैलेंज को स्वीकार कर लिया। एक बलिष्ट कुत्ते को मारा और उसका मांस तैयार किया। मेरी प्रेमिका प्रफुल्लित हो गई। उसका सौंदर्य और बढ़ गया। वह मादक हो गई। हमने जमकर भोजन किया। भोजन का रोमांच इतना सुंदर हो सकता है, इसका अनुभव किया। प्रेम विवाह में बदल गया।"

युवक को सुनने के बाद लगा: "उचित ही तो कह रहा है। भोजन भी संस्कृति और मान्यताओं पर निर्भर है। हमें बिना सांस्कृतिक विशिष्टता को समझे किसी के भोजन और अन्य प्रतिमानों एवं अवधारणाओं पर बोलने का कोई भी अधिकार नहीं है।"

2

भोजन, वस्त्र और आभूषण

नागा जनजाति की बात कर रहे हैं तो एक बात स्पष्ट करना आवश्यक है। भोजन, वस्त्र और आभूषण पर **हर एक** समुदाय का अपना अधिकार और स्वतंत्रता है। जरुरी नहीं जो आपको पसंद है वह सभी को पसंद आये। फिर किसको क्या खाना है, क्या नहीं खाना है, यह उस व्यक्ति और समुदाय के लिए छोड़ दीजिये। मेरे एक मैथिल मित्र कह रहे थे: "अरे कैलाश जी, नागा जनजाति के लोग तो कुत्ते-बिल्ली आदि खाते हैं, फिर आप उनके साथ कैसे काम करते होंगे?"

मैंने सहजता से उत्तर दिया: "यह संस्कृति, मान्यता, पारिस्थितिकी पर निर्भर करता है कि कौन क्या खा रहा है। मिथिला के अधिकांश ब्राह्मण कर्मकाण्डी तो होते हैं लेकिन मांस, मछली, केकड़ा, डोका आदि खाते हैं। जहाँ पर वैष्णव शाकाहारी ब्राह्मण हैं, वे इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते। जैन समुदाय के लोग तो रात को भोजन तक नहीं करते, जिससे किसी भी प्राणी (**कीट-पतंगे**, चींटी) का जाने-अनजाने वध न हो जाए। कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, बंगाल, ओड़िसा, असम **और** नेपाल के अधिकांश ब्राह्मण भी शक्तिपूजक और मांसाहारी होते हैं। मिथिला, नेपाल में ब्राह्मण मांसाहारी भोजन तो करते हैं, लेकिन प्याज, लहसुन आदि को अखाद्य समझते हैं। मिथिला के ब्राह्मण बहुत दिनों

तक ब्राह्मण भोजन में टमाटर का प्रयोग इसीलिए नहीं करते थे कि यह बिलायत अर्थात इंग्लैंड से भारत आया था। यही कारण है कि टमाटर को मिथिला में बिलायती अथवा बिलौती (अपभ्रंश) भी कहा जाता है। मतलब भोजन में क्या सम्मिलित करें, क्या नही करें इस पर हरेक समुदाय की अपनी-अपनी मान्यता है। इसको क्या कहेंगे आप? भारत विविधताओं का देश है। इसकी अनेकता को मत टूटने दीजिये। सभी को अपने तरह से जीने, रहने, खाने और पहनने का अधिकार दीजिये। नागा समुदाय के लोगों के अनेक गुण होते हैं। वे लोग मित्र होते हैं। अगर आप पर भरोसा कर लिया तो आपके लिए जान भी दे देंगे। सदैव मुस्कुराते रहेंगे। नागा बहुत साफ़ सुथरे लोग होते हैं। आप उनसे मिल के तो देखिये। पूर्वाग्रह छोड़ दीजिये। आपको उनमें बेहतरीन इन्सान मिल जायेंगे।" मेरे मित्र चुप हो गये।

दिसम्बर 2019 में मैं मणिपुर के नागा बहुल क्षेत्र उखरूल में संगीत नाटक अकादमी के एक सेमिनार में गया था। यह कहना अनिवार्य हो जाता है कि मणिपुर की आबादी का लगभग 23 प्रतिशत जनसँख्या नागा जनजाति **की** है। यहाँ प्रमुखता से तांगखुल, माओ, जेलियांग्रोंग, एनल और मारिंग नागा रहते हैं। स्मरण रहे, ये सभी नागा जनजाति की उपजातियाँ हैं। **हालांकि** उपजातियां कहना भी एथनोग्राफी विज्ञान और मानवशास्त्र के अनुसार उचित नहीं है। ये सभी स्वतंत्र अस्तित्व की जनजातियां हैं। लेकिन कुछ सामान्य गुणों और एक निश्चित भू-भाग में रहने के कारण इनको एक बृहत् जनजातीय समुदाय यानि नागा समुदाय

में रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए कबुई, जेमी और रियांग को एक बनाकर उनको 'जेलियांग्रोंग' कहा जाता है।

मणिपुर राज्य के वे क्षेत्र जो म्यांमार, नागालैंड और मिजोरम की सीमा से सटे हुए हैं, मूलतः नागा बहुल क्षेत्र हैं। इसमें मणिपुर का उखरूल, तामेंगलोंग, सेनापति और चंदेल प्रमुख नागा बहुल जिले हैं।

उखरूल धरती का श्रृंगार है, प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण है, हिल स्टेशन तो है ही। आप चाहें तो इसे नागा का गढ़ कह सकते हैं, नागा इस स्थान से आत्मिक लगाव रखते हैं। मैं उखरूल शहर में वैसे ही बाज़ार में रविवार के दिन घूमने लगा। कुछ दैनिक जीवन से संबंधित समान खरीदना था। लेकिन एक भी दुकान खुला नहीं था। पता चला कि रविवार के दिन पूरा बाज़ार बंद रहता है। ऐसा क्यों? इसीलिए कि लगभग 98 प्रतिशत नागा वहाँ इसाई हो चुके हैं। वे लोग रविवार को बहुत देर तक अपना समय चर्च में प्रार्थना और सेवा कार्य में लगाते हैं। वहाँ के सभी दुकानदार एवं अन्य लोग जिसमें राजस्थानी, बंगाली, असमिया, बिहारी एवं मेईते लोग हैं, जो नागा नहीं हैं, सभी उनके साथ ताल में ताल मिलाकर जीवन जीते हैं। वे लोग भी रविवार को बाज़ार बंद रखते हैं। यद्यपि कभी भी कोई नागा समूह का नेता या व्यक्ति या चर्च उनको दुकान एवं अन्य प्रतिष्ठान बंद करने के लिए नहीं कहता।

समस्या हमारी अर्थात् भारत के मुख्यधारा के लोगों के साथ भी है। हम लोग पता नहीं क्यों आज भी नागालैंड की तो बात ही छोड़ दीजिये पूरे उत्तरपूर्व भारत के बारे में कुछ भी नहीं जानना चाहते हैं। उत्तरपूर्व का ताई अहोम मुग़ल से पहले भारत आये और मुग़ल के

बाद गए। फिर भी, भारत में हम लोग यही कहते रहते हैं कि बाहरी शासकों में सबसे अधिक काल तक मुगलों ने राज किया। जैसेकि हम नहीं जानते कि पोलो खेल का जन्मदाता मणिपुर है। हम यह भी नहीं जानते कि लोकतक झील में पानी में तैरता हुआ गाँव बसा हुआ है। हम नहीं जानते कि लिखित इतिहास का प्रारम्भ मणिपुर में हुआ था। जब कभी भी नागा जनजाति की चर्चा करते हैं, तो हम यह मान लेते हैं कि नागा अर्थात जो नागालैंड में रहते हैं। जबकि नागा जनजाति नागालैंड के अतिरिक्त मणिपुर, असम, अरुणाचल, मिज़ोरम में भी बहुतायत में रहते हैं। और तो और ये नागा लोग म्यान्मार में भी रहते हैं। नागा जनजाति एकता के लिए लड़ने और संगठित होने के लिए जाने जाते हैं मुझे एक ऐसा नागा प्रधान मिला जो नागालैंड, मणिपुर, अरुणाचल और म्यान्मार को मिलाकर लगभग 325 नागा गाँव का मुखिया था। वे लोग नगालिम (Nagalim) अर्थात ग्रेटर नागा क्षेत्र की मांग बहुत दिनों से कर रहे हैं। स्थानीय और केंद्र सरकार नागा नेताओं के साथ वार्तालाप करते रहते हैं। अभी इस विषय पर नहीं लिखना ही उचित लगता है।

जब मैं 2007 में पूरे उत्तर-पूर्व भारत की सांस्कृतिक विरासत के मूर्त और अमूर्त स्वरुप के संरक्षण, संवर्धन एवं प्रलेखीकरण के लिए भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय के लिए कार्य कर रहा था तो एक दिन मणिपुर में कुछ नागा प्रतिनिधि मुझसे मिलने आये। उन्होंने कहा: “हम लोगों के नेता (अंडरग्राउंड कह लीजिये) आपसे मिलना चाहते हैं। क्या आप मिलना पसंद करेंगे?”

मैंने हाँ कह दिया।

अब उन्होंने एक शर्त लगायी। शर्त यह कि मुझे उन पर विश्वास करना होगा। वे लोग मेरे दोनों आंखों पर पट्टी बांधकर मुझे गहन जंगल की ओर ले जाना चाहते थे। काम थोड़ा जोख़िम भरा था। हालाँकि 2005 से मैं उत्तर-पूर्व भारत और सिक्किम के विभिन्न स्थानों और समुदायों के साथ लगातार काम कर रहा था। उनसे अर्थात स्थानीय लोग, नेता, विद्यार्थी, संस्कृतिकर्मी, कलाकार, आदि से सम्बन्ध प्रगाढ़ होते जा रहे थे। वे मुझ पर विश्वास करने लगे थे और मैं उन पर विश्वास करने लगा था। मैं वहां उनके साथ कार्य करते हुए अपने आपको सौभाग्यशाली समझ रहा था। मेरे अकादमिक ज्ञान का विस्तार ग्राउंड रियलिटी के आधार पर हो रहा था। किताबी ज्ञान को जीवन के यथार्थ और सांस्कृतिक संवाद एवं लोगों के साथ हो रहे अनुभव से पुख्ता कर रहा था। संस्कृति के साथ-साथ वहां की प्रकृति का स्वरूप, विस्तार, वैभव और संस्कार को समझने लगा था। वहां की संस्कृतियां और प्रकृति का स्वरूप वैसे तो अनंत महासागर की तरह है, फिर भी कतरा-कतरा ही सही वास्तविक ज्ञान से अपने आपको अपडेट तो करने ही लगा था। चार्म, रोमांस और कार्य करने का जज्बा मुझ पर हावी हो रहे थे। ऊपर से स्थानीय लोगों का समर्थन और भी रोमांच पैदा कर रहा था। प्रतिमाह कम-से-कम बीस दिन मैं उत्तर-पूर्व भारत में बिताने लगा था।

एक क्षण रुककर एक संस्मरण याद करने लगा। 2006 के अंतिम महीने में असम में 'नार्थ कछार हिल्स' जो कि अब 'दिमा हसाओ' के नाम से जाना जाता है, वहाँ के दिमासा (नागालैंड एवं असम में दिमासा को कछारी के नाम से जाना जाता है) नागा, वैफे,

कुकी एवं अन्य आदिवासी समूह के कुछ युवक एवं युवती मेरे पास गुवाहाटी के श्रीमंत शंकरदेव कला क्षेत्र में मेरे पास आये और कहने लगे: "आप नार्थ कचार हिल्स के डिस्ट्रिक्ट मुख्यालय हाफलोंग शहर में क्यों नहीं कुछ सांस्कृतिक कार्यक्रम, डॉक्यूमेंटरी, सेमिनार, नृत्य आदि का कार्यक्रम रखते हैं?'

संयोग से, मेरे सभी मित्र, दिल्ली के बॉस एवं असम के लोगों ने वहाँ यह कहकर जाने के लिए मना किया कि किसी भी समय मेरा अपहरण किया जा सकता है। जान से मार दिया जा सकता है या फिर कार्यस्थल पर ही बम **वि**स्फोट किया जा सकता है। मैं पूरा डर गया था। मौत से भला कौन नहीं डरता? मैं भी डरा, केवल डरा ही नहीँ, बुरी तरह भयभीत भी हो गया था। लेकिन युवक और युवती को अगले दिन आने के लिए कहकर विदा किया था। उसमें एक जेमी नागा समूह से पति-पत्नी आये हुए थे।

अगले दिन वे फिर आये। बहुत आत्मीय भाव से कहने लगे: "मिश्र सर, आप चलो हाफलोंग। हम लोग आपकी और आपके टीम की सुरक्षा करेंगे। जब तक आप रहेंगे पूरे नार्थ कछार हिल्स में कुछ नहीं होगा। आप दस दिन की योजना बनाकर चलिए। नार्थ कछार ऑटोनॉमस हिल्स कौंसिल, उसका सांस्कृतिक केंद्र और सभी स्थानीय प्रशासन आपके साथ रहेंगे।"

सच कहूँ तो मुझे उस दिन उन लोगों ने बहुत निडर बना दिया था। मुझे लगा: "इस लघु और दुर्गम क्षेत्र में करीब पंद्रह आदिवासी समूह के लोग भी तो रहते हैं। यहां के लोग विकास क्या है, इससे वंचित हैं। कार्यक्रम तो इन्हीं स्थानों पर आयोजित करने की जरूरत है। ऊपर से बराक नदी घाटी पर भी कार्य तो करना ही है।

अगर ये लोग ईमानदारी से मेरा और मेरे टीम की सुरक्षा की जिम्मेवारी ले रहे हैं तो मुझे वहां अवश्य जाना चाहिए।" यही सोचते हुए अन्ततः मैंने हाँ कह दिया।

मुझे बराक घाटी के नॉर्थ कछार हिल्स में एक दस-दिवसीय सांस्कृतिक कार्यशाला सह पब्लिक परफॉर्मेंस करना था। इसकी जानकारी मैंने अपने बॉस अर्थात इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के सदस्य सचिव डॉ. कल्याण कुमार चक्रवर्ती को दूरभाष पर दिया। वे मुझे परिवार के सदस्य के समान स्नेह करते थे। उत्तर-पूर्व भारत में अनेक जगह हमारे साथ चलते थे। कैसे कहां और किस विषय पर कार्य करना चाहिए, इस बारे में मंत्रणा देते थे। मेरे अनुभव और विचार को गंभीरता से सुनते थे। परियोजना बनाने और उसको कार्यान्वित करने का ऑटोनोमी देते थे। प्रशासन और अकाउंट्स के लोग बेवजह मुझे परेशान न करे, इसके लिए उन्होंने पहले ही निर्देश दे रखा था। मुझसे बात करते ही चक्रवर्ती महोदय बिफर पड़े। कहने लगे: "अपने जान की चिंता नहीं है तो कम-से-कम अपने बाल-बच्चों की तो सोच लो। नॉर्थ कछार हिल्स में काम करना सही नहीं है।"

लेकिन मैंने तो मन बना लिया था। मैं अपने निर्णय पर अडिग था। मैंने उनको विश्वास दिलाया कि वहां मुझे कोई दिक्कत नहीं होगी। स्थानीय लोग सभी तरह से मेरे साथ हैं। वहां जाने से एक नया संबंध स्थापित होने की संभावना है। आधे मन से ही सही, चक्रवर्ती महोदय ने मुझे हाफलोंग शहर जाने की आजादी दे दी। हमने तैयारी शुरू कर दी। हम लोग सड़क मार्ग से अपने काफ़िले के साथ चले जा रहे थे। प्रकृति का मनमोहक और कौमार्य स्वरूप

देखकर मैं चकित था। जिस तरह से कालकाजी से शिमला जाने के लिए नैरो गेज पटरी का निर्माण कर अंग्रे**जों** ने रेल सेवा की शुरूआत की थी, ठीक वैसा ही 1894 में अंग्रेजों ने हाफलोंग के लिए रेल ट्रैक बनाकर रेल सेवा शुरू **की थी**। लोगों में गजब का उत्साह था। लोग हजारों की संख्या में आने लगे। सुबह से लेकर देर रात तक कार्यक्रम होते रहते। हमने पंद्रह जनजातियों पर काम किया। कोई दुर्घटना अथवा अप्रिय घटना **नहीं** घटी। हम लोग जिस दिन गुवाहाटी आये, उसके अगले दिन ही वहाँ विस्फोट हुआ, जिसमें 4 लोगों की मौत हो गई थी।

मुझे अब इस वाकये और नार्थ कछार हिल्स के कार्यक्रमों की सफलता ने मणिपुर में भी अंडरग्राउंड नागा के सरदार से मिलने के लिए उत्साहित किया। काफी सोच-विचार के बाद मैं उनके साथ आँखों में पट्टी बांधकर जाने के लिए तैयार हो गया।

3

अनुभव और रोमांच

— भाग 1 —

जो हाफलौंग में हुआ वह एक जादू था। उस पर अलग से लिखूंगा। प्रसंग की व्याख्या और उद्धरण अनिवार्य थे, इसीलिए लिख दिया। अब आगे बढ़ते हैं। पिछले अनुभवों को आधार मानते हुए मैंने नागा युवकों के दल **की** यह शर्त स्वीकार कर **ली** कि मैं उनके साथ अपने आंखों में पट्टी बांधकर उनके द्वारा निर्धारित स्थान, जो गुप्त होता है, पर चलूंगा। मैंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि ना तो मैं किसी भी सरकार – केंद्रीय अथवा राज्य का अधिकारी, निर्णायक हूं, ना ही पत्रकार या जननेता। अतः वे लोग मुझसे बहुत क्या तनिक भी राजनीतिक लाभ की आशा न पालें। हां! एक संस्कृति कर्मी, एक मानव विज्ञानी और एथनोग्राफी के लघु शोधार्थी के रूप में जो कुछ भी मुझसे हो सकेगा, उसे अवश्य करूंगा। मेरी वाणी सुनने के बाद उस प्रतिनिधि मण्डल के एक सदस्य बोले: "हमें आपसे कुछ नहीं चाहिए। हम लोग आपसे अपनी बात रखना चाहते हैं। बस आप सुन लीजिएगा। आप चलें, हम लोग की तरफ से कोई भी पूर्व निर्धारित शर्तें बिलकुल नहीं **हैं**। हमारे नेता आपसे मिलना चाहते हैं। यही है हमारा उद्देश्य।"

उपरोक्त कथन को सुनते ही मेरा विश्वास और बढ़ गया। कम-से-कम डर तो अब एकदम खत्म हो गया था। अब चलने की प्रक्रिया का वर्णन आवश्यक है। मुझे कहा गया कि फलाने दिन मुझे एक खास जगह पर अकेले में मिलना है। आगे क्या करना है, यह उनका काम था।

खैर! निर्धारित स्थान पर मैं उनसे मिलने पहुंचा। वहाँ कुछ देर बाद एक महिला मिली। बहुत देर तक मुझे निहारती रही। फिर मेरे पास आई और एक नई जगह जाने के लिए बोल कर चली गयी। अब मैं थोड़ा घबराया: "यह क्या हो रहा है?"

लेकिन अब अपने निर्णय से पीछे भी नहीं हट सकता था! क्या करता? हिम्मत करके नए गंतव्य के लिए चल पड़ा। उस जगह कोई नहीं था। कुछ देर खड़ा रहा। इन्तजार करता रहा। अब एक युवा आया। उसके साथ थोड़ी दूरी पर दूसरा युवा खड़ा था। वह मुझे इशारे से मोटरसाइकिल तक आने के लिये बोला। मैं पहुँच गया। एक व्यक्ति मोटरसाइकिल स्टार्ट करके उस पर पहले से ही सवार था। उसने मुझे बैठने का निर्देश दिया। मैं पूरा रोबोट बन **चु**का था। मैं उस मोटरसाइकिल पर बैठ गया। वह मोटरसाइकिल बहुत तेजी से चलाने लगा। करीब बीस मिनट में हम लोग एक झाड़ियों से भरे घर **तक** पहुँच गए। वहाँ मेरे अभिवादन के लिए तीन लोग बैठे थे। सभी के मुँह पर मास्क लगे हुए थे। उन्होंने मुझे समझाना शुरू किया: "सर, करीब 3 घंटे लगेंगे। आपको घबराने की जरूरत नहीं है। आपको भी मास्क लगाना होगा। जहाँ कहीं भी किसी चीज की जरूरत हो **तो** बता दीजियेगा। आज रात हम लोग वहीं गुजारेंगे और कल सुबह चले आयेंगे।"

मैंने इशारे से ही अपनी सहमति दे दी। इतने में भीतर से एक महिला आई और उसने मेरे आँखों पर पट्टी लगा दी। अब मैं कुछ भी नहीं देख सकता था। घबराहट में तो अवश्य आ गया था। अब हम सभी को एक-एक बाँस के बर्तन में चावल का स्थानीय बियर दिया गया। मैंने उसे पी लेना ही श्रेयस्कर समझा। बियर के साथ ऑमलेट भी था। बहुत बुरा स्वाद नहीं था।

करीब दस मिनट के बाद हम लोगों को एक जीप में बिठाकर वे लोग चल पड़े। रास्ता उबड़-खाबड़ था। हम चलते रहे। रास्ते में दो जगह आवश्यक कार्य से रुके और फिर चल पड़े। चलते-चलते करीब तीन घंटे के बाद गंतव्य पर पहुँच गए। वहाँ प्रवेश करते ही मेरे आँखों की पट्टी खोल दी गई। अब मैं उन लोगों को देख सकता था। सभी लोग कलात्मक नागा चादर ओढ़े हुए थे। वहाँ एक टिपिकल नागा घर में कुछ लोग पहले से बैठे हुए थे और रक्ताभ अग्नि का आनंद ले रहे थे। कुछ गोस्त, शायद बैल और सूअर के, चूल्हे के ऊपर टंगे हुए थे। उनको चूल्हे के अग्नि की तपिश मिल रही थी। अग्नि और मांस के पकने की सुगंध से घर कुछ अलग ही अरोमा उत्पन्न कर रहा था। वहाँ चार पुरुष और तीन महिलायें बैठी **थीं**। घर पर चटाई बिछी थी। सफाई में तनिक भी कोताही नहीं थी। घर के एक कोने में पकी हुई लौकी के गुदे निकालकर उसमें देशी बियर भरे हुए थे। नागा लोग जन्मजात कलाप्रेमी और कलाकार होते हैं। इसका प्रमाण यहाँ भी मिल रहा था। एक-दो **मिट्टी** के घड़े भी थे। **मिट्टी** के घड़ों को और लौकी के **बर्तन** को बाहर से बेंत के स्किन से कलात्मक ढंग से बुनकर सुसज्जित किया गया था। घर के प्रवेश द्वार पर दोनों तरफ जानवरों के सींग लगे हुए थे।

लकड़ी का बना एक अति विशाल और बड़ा लॉग ड्रम था। इसमें बीच से गड्ढ़ा बना दिया गया था। बाहर से अनेक कलात्मक डिजाइन बने थे। लॉग ड्रम के पास लकड़ी और बेंत और बाँस रखे थे, जिनको एक धुन में पीटने से एक स्वर-लहरी का निर्माण होता था। द्वार पर पड़े दोनों लकड़ी में गजब के नक्काशी का काम दिख रहा था। जानवरों की हड्डियों, सींग और दांतों से अनेक कलाकृतियों का निर्माण अगर सीखना चाहते हैं, तो आप नागा जनजाति के लोगों से सीख सकते हैं।

अब उन लोगों ने मुझे एक लकड़ी के मोढ़े पर सम्मान के साथ बिठाया। फिर सभी लोगों से परिचय कराया गया। एक बार देशी चावल का देशी बियर हम सभी ने ग्रहण किया। कुछ सलाद बने हुए थे। नागा लोग चावल के शौक़ीन होते हैं। चावल की अनेक स्थानीय **किस्में** मिलती **हैं**, हालांकि आजकल उन स्थानीय नस्लों का अंत हो रहा है। इनके चावल पुष्टिकारक और स्वादिष्ट भी होते हैं। ये लोग मसाले और तेल का प्रयोग कम करते हैं। स्थानीय जड़ी-बूटी, हल्दी, मिर्च आदि का प्रयोग अधिक होता है। बाँस की जड़ें और पल्प भी खाते हैं। मांस में सामान्यतया हरी सब्जी डालते हैं। ये एक साथ खाने में विश्वास करते हैं। अतिथियों का सर्वाधिक सम्मान करते हैं। बहुत ही मस्त मलंग होते हैं। इनका समाज **स्वतंत्र** समाज है। लड़के और लड़कियों को बहुत आजादी है। वे लोग हम लोगों के समान अकारण बंधन में नहीं रहते। प्रेम और कला इनके जीवन का मुख्य **उद्देश्य** है। **हर एक** नागा अव्वल दर्जे का शिकारी होता है। महिलायें खाना बनाने में दक्ष होती हैं। उनको पुरुष का भरपूर सहयोग मिलता है।

अरे, मैं कहाँ भटक गया! परिचय के बाद वे लोग अनेक तरह की बातें करने लगे। उसमें एक व्यक्ति दिल्ली यूनिवर्सिटी का छात्र रह चुका था। उसने बहुत अनुभव बताए। यह व्यथा भी बाँटी कि किस तरह से नागा एवं अन्य उत्तर-पूर्व के छात्रों का दिल्ली में अपमान होता है।

फिर उन्होंने मेरे बारे में पूछा और मुझे बताने के लिए कहा। मैंने बताया: "मैं भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय के लिए कार्य कर रहा हूँ। हमारा कार्य उत्तर-पूर्व भारत के सांस्कृतिक वैभव का दस्तावेजीकरण करना है। उनके बारे में लोगों को जानकारी देना है। परम्परागत कानून को समझना है। किस तरह से छोटी-छोटी समस्याओं का आप निराकरण करते हैं, वह समझना है। आपके लिए संस्कृति क्या है, वह समझना है। मैं आप लोगों के फोकलोर, भाव भूगोल, यात्रा वृतांत, देवी देवता, अनुष्ठान, कृषि प्रणाली, स्थानीय चिकित्सा, देशी जड़ी-बूटियों का ज्ञान सभी कुछ सीखना चाहता हूँ।"

उनका मुखिया बोलने लगा: "हमें आपके बारे में सभी प्रकार की जानकारी है। आप अच्छा काम कर रहे हैं। हम लोग आपकी मदद करना चाहते हैं। आप जहाँ काम करना चाहें, अवश्य करें। किसी भी तरह की समस्या हो तो हमारे लोगों से बात करें, हम लोग उसका निराकरण करेंगे।"

मैंने विनम्रता से उनके कथन का स्वागत किया। फिर मैंने हिम्मत करके कहा: "आप जब जानते हैं कि मैं केवल एक संस्कृतिकर्मी हूँ तो आप यह भी जानते होंगे कि मैं आपके

आन्दोलन के लिए कुछ भी नहीं कर सकता? फिर भी मुझे यहाँ बुलाने का क्या कारण है?"

उनका मुखिया बोलने लगा: "देखिये, आप जो लिखेंगे और बोलेंगे वह सही होगा क्योंकि आप ईमानदारी से अपना कार्य कर रहे हैं।"

नागा नेता की वाणी सुनकर मैं अति प्रसन्न हुआ। लगा, कोई तो है जो हमारे काम और रिसर्च को समझ पा रहा है।

अब मन का डर भाग चुका था। अब मैं अपने-आपको उन नागा नेताओं के बहुत करीब पा रहा था। उनका अपनत्व पाकर पुलकित था।

— भाग 2 —

अब साढ़े चार बज गये थे। पता नहीं क्यों अब मेरे मन का डर भी पूरी तरह से मिट गया था। मुझमें कुछ नया समझने और जानने का उत्साह प्रबल हो गया था। वे सभी नागा युवक और युवती मेरे मित्र बन चुके थे। कहते हैं ना, मित्रता में अगर दिल नहीं मिले तो एक परिवेश में रहकर भी जीवनपर्यन्त नहीं बनती न निभती और अगर दिल, आपके विचार मेल खा जाये तो रेलगाड़ी में चलते मुसाफ़िर के साथ चन्द घंटों की यात्रा के दौरान मित्रता हो जाती है। पता नहीं क्यों, मुझे ऐसा आभास होने लगा था कि मैं भी उन्हीं जनजातीय समाज का हिस्सा हूँ। शायद एथनोग्राफी और मानव विज्ञान में जो मुझे प्रारम्भिक प्रशिक्षण मिला था, यह सब उसी का

प्रभाव था! चाहे जो भी हो, कुछ तो जरुर था जो मुझे अच्छा लगने लगा था।

छांग – देशी चावल का बियर, पीने के बाद अंडरग्राउंड मुखिया बोलना शुरू किया: "सर, इस देश में अपने हक़ के लिए मांग करना क्या जुर्म है?"

मैंने उत्तर दिया: "बिलकुल नहीं। भारत एक प्रजातान्त्रिक देश है। इसमें हरेक नागरिक और समुदाय को अपनी बात कहने का अधिकार मिला है। लोग अपनी बात धरना, जुलूस, एवं अन्य माध्यमों से कहते आ रहे हैं। ये सभी प्रजातान्त्रिक प्रक्रियायें हैं।

नागा मुखिया बोल पड़ा: "हम भी यही कर रहे हैं। आपने मिज़ो की जनसंख्या के आधार पर मिज़ोरम बना दिया। फिर जिन क्षेत्रों में नागा जनजातियों की जनसंख्या सर्वाधिक है, उनको नागालैंड के साथ जोड़ने में क्या दिक्कत है? हमारे मणिपुर के मेतेई समझते हैं, ऐसा होने से उनको दिक्कत होगी। अरे बाबा, कोई दिक्कत नहीं होगी। हम लोग तो भाई-भाई की तरह सैकड़ों सालों से एक साथ रहते आये हैं। यहाँ हिल और वैली वालों के साथ चोला-दामन का रिश्ता रहा है। हम लोग अर्थात नागा जनजाति हिल्स अर्थात पहाड़ों पर रहते हैं और मेतेई समतल में। जब हम समतल में जाते हैं तो उनके साथ वार्तालाप और व्यापार करते हैं। उनसे अपनी आवश्यकता की वस्तु लेते हैं। इतना ही नहीं, जो चीज़ समतल में नहीं होता, हम अपने साथ लेकर जाते हैं। इस तरह से, हमारे और उनके पूर्वजों ने आपसी तालमेल बैठाया था, जिसका कमोवेश पालन हम लोग आज भी कर रहे हैं। फिर द्वन्द्व कैसा? मान्यता तो यह भी है कि हम लोगों के पूर्वज सगे भाई थे। जो बड़े थे, वे अपने

बच्चों के साथ समतल में रह गये और छोटे भाई अपने बाल-बच्चों के साथ पहाड़ी पर चढ़ गए। हमने एक-दूसरे के सुख-दुःख को जानने के लिए एक उपाय यह निकाला **कि** रात में एक लालटेन हम ऊँची पहाड़ी पर जला देते थे। लालटेन जलने का अर्थ यह था कि समतल के लोग निश्चिन्त हो जाएँ कि हम लोग शांति से हैं और अपना जीवन आनंद से बिता रहे हैं। यह एक अलग बात है कि बदलते समय के साथ मेतै लोग पहले कृष्णभक्ति की ओर आकर्षित होकर हिन्दू हो गए और नागा धीरे-धीरे ईसाई होते गए। धर्म अपनी मान्यता होती है। हम भले ईसाई हैं लेकिन हमें नागा होने पर गर्व है, सर। हम अपने पूर्वजों, अपनी अनुष्ठानों, मान्यताओं का सम्मान करते हैं। हमें लगता है कि ईसाई होना भी हमारे लिए गर्व का विषय नहीं है। हमें गर्व तो केवल और केवल नागा होने पर है। हम अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं, सर। इसमें क्या गलत है? हमारे नागाओं का बहुत बड़ा भू-भाग म्यांमार में चला गया है। वहाँ वे भी प्रसन्न नहीं हैं। जब पाकिस्तान या बांग्लादेश के हिन्दू के साथ वहाँ की सरकार अथवा जनता अत्याचार अथवा भेदभाव करती है तो पूरा भारत बोलने लगता है। वहाँ के दूतावास के पास लोग नारे लगाने चले जाते हैं। पूरे देश में विद्रोह का बिगुल बजने लगता है। ऐसा होता है न सर! फिर जब नागा जनजाति के साथ ऐसा होता है, तब यह देश का न्यूज़ क्यों नहीं बनता? हमारा संघर्ष इसी बात के लिए है सर। इसमें क्या बुराई है। और हम जब अपनी आवाज उठाते हैं तो हमें अलगाववादी, उग्रवादी और न जाने किस-किस शब्दावली से पुकारा जाता है। पत्रकार भी भीतर के इनर करेंट्स को नहीं समझ पाते हैं। ऊपर-ऊपर देखकर जो मन में आता है, लिख देते हैं।

हमारी वेदना न तो सामान्य जनता और न ही सरकार तक पहुँच पाती है। फिर हमें अपने आपको जीवित प्रमाणित करने के लिए उग्र बनना पड़ता है। सरकार हमें अब प्रताड़ित करने लगती है। सरकारी तंत्र, पुलिस, पारा मिलिट्री फोर्सेस सभी हमारा और हमारे समाज का दमन और शोषण करने लगते हैं। हम भी लाचार होकर उनका प्रतिकार करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। हम लोग ऐसे लोगों की मध्यस्थता चाहते हैं, जो ईमानदारी से हमारी पक्ष को समझें। जो हमारी भावनाओं का सम्मान करें। हम यह भी स्वीकार करते हैं कि अभी तक नागा संस्कृति, आगमन एवं विस्तार का इतिहास नहीं लिखा गया है। हमरे प्रवास अथवा आगमन की कथा हम लोगों के फोकलोर में सुरक्षित है जिसका क्षय हो रहा है। हम लोग अब इस पर भी गंभीर हो रहे हैं। हमें पता चला है कि आप नागालैंड के सोलह नागा समूहों के परम्परागत कानून का दस्तावेजीकरण करवा रहे हैं। हम लोग जितने भी गाँवबूढा (मुखिया) हैं, अनुभवी महिला पुरुष हैं, उनसे मिलकर इस कार्य में आप जैसे लोगों की मदद करना चाहते हैं। हमें अपने पूर्वजों के देवी-देवताओं का, मान्यताओं का मेन्टल लैंडस्केपिंग करना है। आम लोगों में, जो नागा आदिवासी के प्रति गलत धारणाएँ अथवा भ्रम हैं, उसको दूर करना है।"

चूल्हे के चारों तरफ हम सभी गोलाई में बैठे अग्नि की तपिश ले रहे थे। बीच-बीच में छांग **भी** पी रहे थे। एक बार कुछ जड़ी-बूटी और पत्तेदार सब्जियों से मिश्रित सूप का दौर भी चला। सच कहूँ तो मुझे उसमे बहुत स्वाद नहीं लगा लेकिन मैंने पी लिया। वैसे वह स्थानीय सूप उतना खराब भी नहीं था। अब शाम के सात बज चुके थे। इस क्षेत्र में सात बजने का अर्थ है – रात्रि-विश्राम का समय। खैर!

निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार, हमें रात्रि-विश्राम यहीं पर करना था, इसीलिए मैं समय की चिंता नहीं कर रहा था।

कुछ देर के बाद एक नागा युवती उस नागा मुखिया से स्थानीय भाषा में कुछ बोली। नागा मुखिया उसको अंग्रेजी में थैंक यू कहते हुए, पुनः मेरी ओर देखकर बोलने लगा: "सर, आप मेरी भावनाओं को समझ पा रहे हैं न?"

मैं बोला: "आप बोलिए। मैं अच्छी तरह से समझ पा रहा हूँ। मैं अपने आपको आपकी स्थिति में लेकर देख रहा हूँ। आपकी भावनाओं के साथ जुड़ पा रहा हूँ। अब लग रहा है मीडिया अगर **ई**मानदार न हो तो कैसे अर्थ का अनर्थ हो सकता है। आप विस्तार से बोलिए। कम-से-कम मैं अपने-आपको तो समझा सकूँ कि आपके संघर्ष का यथार्थ क्या है?"

नागा मुखिया बोला: "देखिये, आज से कम-से-कम 75 साल पहले नागालैंड या **यह** कह लीजिये कि किसी भी नागा समाज में नरबलि की घटना घटी। उसके बाद एक भी उदहारण नहीं है, फिर भी लोग हम लोगों को 'हेडहंटर' कहते हैं। ठीक है, किसी ज़माने में, किसी विशेष उत्सव पर हम लोग हेडहंटिंग करते थे। हमने अपने बुजुर्गों से इसके बारे में पूछा तो उन्होंने जो जानकारी दी वह बहुत महत्वपूर्ण है। यद्यपि बाहर के लोगों ने इस संबंध में कुछ नहीं लिखा है। होता यह था कि एक नागा नायिका के लिए दो योद्धा आपस में लड़ते थे। जो अधिक ताकतवर होता था वह दूसरे का सिर अलग कर देता था। कटे हुए सिर की पूजा अर्चना एक वीर पुरुष के रूप में होती थी। क्योंकि वह भी कोई सामान्य आदमी तो होता नहीं था। जब दो वीर योद्धा लड़ेंगे तो एक की जीत और एक की हार तो

निश्चित है। अपने देवता के समक्ष हम लोग कटे सिर की पूजा अर्चना करते थे। वह नायिका जिसको पाने के लिए वह लड़ा था, वहाँ आती थी और बहुत ही अदब से उसको चूमती थी। उपस्थित लोग समवेत स्वर में उस नायिका के स्वागत में और जिसको वीरगति मिली उसके लिए वीरगान गाने लगते थे। उनको सैनिक योद्धा माना जाता था। युद्ध में, उसके द्वारा दिखाए गए करतब पर बहुत दिनों तक चर्चायें होती रहती थी।"

अब तक यह नागा मुखिया मेरे लिए बहुत सार्थक और प्रमाणिक सूचना प्रदाता बन चुका था। उसके कहे एक-एक शब्द मेरे मस्तिष्क के कंप्यूटर चिप में अक्षरश: अंकित होते जा रहे थे। भय तो कब का भाग चुका था। सभी लोग अपने-अपने ढंग से नागा नेता को जानकारी देते। वह सभी जानकारी एकत्रित करता और फिर मुझे समझाता। इस बीच भोजन बन चुका था। भोजन क्या था। केले के पत्ते में चावल डालकर उसमें पानी डालकर थोड़ा नमक और कुछ जड़ी बूटी डालकर उसको लपेटकर बाँस में डालकर उसे चारों तरफ से जला दिया गया था। फिर उसको निकालकर खाना था। स्थानीय मसालों के साथ सांड के मांस को पकाया गया था। मैंने पूछा: "यह क्या है?"

उन्होंने सींग दिखाते हुए कहा: "इसके मांस की तरकारी।"

मैंने कह दिया: "मैं ये नहीं खाता।"

अब वे चिंतित हो गए। मैंने समझाया: "आप चिंता न करें। टमाटर, प्याज, हरी मिर्च, आदि के सलाद के साथ मैं चावल खा लूँगा। उन्होंने एक चटनी भी **बनाई थी**। चटनी में सूखी मछली, बाँस के कोपल के टुकड़े, लहसुन, हरी मिर्च और स्थानीय खट्टे फल

मिश्रित थे। स्वाद कोई ख़राब नही था। कुल मिलाकर मैंने चावल को सलाद और चटनी के साथ खा लिया था। बाँस के अंदर केले के पत्ते में पके चावल का स्वाद बेजोड़ था। मैंने बहुत चाव से खाया। उसमें केले के पत्ते और बाँस का मिश्रित स्वाद और **सुगंध** या अरोमा आ रहा था। खाने के बाद भी बातचीत का क्रम चलता रहा।

4

प्रकृति संतति

बाँस के भीतर पके चावल का स्वाद जिह्वा पर आज भी अंकित है। भोजन के बाद भी हम लोग कुछ देर बातें करते रहे। नागालैंड के कोहिमा शहर में जो इस राज्य की राजधानी भी है, प्रतिवर्ष आयोजित हॉर्नबिल फेस्टिवल पर भी चर्चा हुई। हॉर्नबिल पक्षी नागा पहचान का प्रतिनिधित्व करता है। इस दस द्विवासीय कार्यक्रम में सभी नागा समूह अपनी सहभागिता निर्धारित करते हैं। आजकल नागा के अतिरिक्त, दूसरे आदिवासी समूह भी आने लगे हैं। दिसंबर महीने के प्रथम सप्ताह में आयोजित होने के कारण इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। राज्य सरकार के द्वारा आयोजित होने से इसका वैधानिक महत्व भी बढ़ जाता है। प्रत्येक नागा समूह युवा घर या यूथ डॉरमिटरी बनाते थे। इसमें अविवाहित युवा आकर रहते थे। आखेट, युद्ध कौशल, नृत्य, कला, गृह निर्माण, जड़ी बूटियों का ज्ञान सभी कुछ यहां सीखते थे। यह अपने आप में एक गुरुकुल के समान होता था। लड़कियों के लिए अलग घर होते थे। युवा नागा लड़के और लड़कियां आपस में बातचीत करते थे। सहमति होने पर विवाह भी कर सकते थे। यद्यपि इसके लिए सामाजिक मान्यता अनिवार्य थे। सामान्यतया वर पक्ष के लोग कन्या पक्ष के लोगों को सुअर, छांग, वस्त्र आदि उपहार में देते थे। मिथुन (पहाड़ी गाय-बैल) आदि भी देने का प्रावधान था। लड़कियां

भी गृहकार्य से लेकर, नृत्य, कला आदि में यहां आकर प्रवीण होती थी। दुर्भाग्य से, यह परंपरा आज के समय लगभग समाप्तप्राय है। हॉर्नबिल फेस्टिवल में प्रत्येक नागा समुदाय अपने-अपने यूथ डॉरमेटरी का निर्माण बूढ़े और अनुभवी लोगों की सहायता से करते हैं। उनके गृह निर्माण में कलात्मक अभिव्यक्ति का अनुपम उदाहरण देखने को मिलता है। वर्नाकुलर आर्किटेक्चर, स्थानीय घास, बाँस, लकड़ी, मिट्ठी आदि का समानुपातिक समन्वय, जगह का प्रबन्धन, पक्षियों के पंख, जानवरों के सींग सिर, हड्डी आदि से गृह को सजाना, कौड़ी के प्रयोग से और अधिक आकर्षित करना आदि कुछ ऐसी कलाएं हैं, जिसको देखकर आप विस्मय में पड़ जायेंगे। हरेक समुदाय का घर आपको बहुत देर तक वहां से हटने नहीं देगा। इन घरों में, युद्ध के अस्त्र, तीर, धनुष, तलवार, छाती को सुरक्षित करने वाले कवच और भी अनेक सामग्री होते हैं। खेल के समान, कृषि यंत्र, अनुष्ठान में प्रयुक्त सामग्री, बेंत के समान, टोकरी, मिट्टी के घड़े भी होते हैं। इस पर विस्तार से फिर कभी चर्चा करेंगे।

इसके बाद, एक दूसरे घर में जहां एक चूल्हा जल रहा था, मुझे सोने के लिए ले जाया गया। **चूल्हे** में लकड़ी का एक विशाल भाग जल रहा था। एक लकड़ी 15-20 दिनों **तक** चल **जाती** है। इस घर में बाँस के कुछ मचान की आकृति के आयताकार जगह बने हुए थे। उस पर बिस्तर लगे हुए थे। बाँस से ही घर को बंद किया जाना था। द्वार पर एक विशाल लकड़ी का टुकड़ा रखा था जिससे हिंसक जानवर भीतर न आ सके। खैर! मैं वहां जाकर सो गया। निर्देश यह मिला था कि मुझे सुबह 4 बजे उठ जाना है। यह भी बता दिया गया था कि अमुक व्यक्ति मुझे उठा देगा। उठने के बाद, मैं आधे घंटे

सेभीतर तैयार होकर इसी जीप से वापस उस शहर जाना था, जहां से यहां आया **हुआ** था। सब कुछ यंत्रवत् एक यांत्रिक व्यवस्था के तहत चल रहा था।

खैर मैं सो गया। सोया क्या, सोने का अभिनय करने लगा। जंगल के जानवर, कीड़े-मकोड़े, टिड्डियों के दल अलग ही कलरव करने लगे थे। हवा बह रही थी। हवाओं के **झोंकों** के अपने मधुर लय और ताल थे। अंधेरी रात का आलम क्या लिखूं! अनुभव शब्दों में नहीं व्यक्त किए जा सकते। फिर भी अपने अनुभव को तो बताना ही पड़ेगा, इसीलिए कुछ शब्द और वाक्यों से घटनाक्रम को बताने का उपक्रम कर रहा हूं।

पत्तों के आपस में टकराने की आवाज को सुन सकता था। घर के बाहर कड़ाके की ठंडक थी। यह अहसास तो था इसीलिए बाहर झांकने का यत्न ही नहीं किया। विचारों के द्वंद्व, नागा जनजाति की संस्कृति, संवेदनाएं, उनकी अपनी संस्कृति, धरती और अस्तित्व की रक्षा करने की चिंता, अनेक प्रश्न थे जो न तो मुझे सोने दे रहे थे, न ही मैं जागकर उस पर अभी बहुत गंभीरता से विचार करना चाहता था। संस्कृति भी तो राजनीति का ही अस्त्र है, आज अच्छी तरह से समझ सकता था। भावनाएं अनेक दिशाओं में भटक रहे थे। उन्हें संकलित कर एक धागे में नहीं पिरो पा रहा था। बैचेनी अकारण बढ़ती जा रही थी। मन के तरंग को बीच-बीच में बाहरी आवाज मानो बिखंडित कर देते थे!

पूरी रात न सो पाया न जग पाया। कब सुबह हो **गई**, पता ही नहीं चला। निर्धारित समय पर एक महिला नागा अपने हाथ में बाँस के बने बड़े से कप में एक कप चाय लेकर आई। चाय में दूध

नहीं था। चीनी और कुछ जंगली पते अवश्य डाले गए थे, जो चाय को स्वादिष्ट बना रहे थे। वह नागा महिला मुझे बिना कहे ही बगल में रखे घड़े से एक ग्लास पानी निकालकर मेरे सामने रख दी। मैं भी एक आज्ञाकारी शिशु की तरह पानी पीकर चाय पीने लगा। चाय पीकर जल्दी-जल्दी तैयार हो गया। जब बाहर निकल कर जीप में बैठने वाला ही था तो नागा मुखिया आ गया। कहने लगा: "आपसे मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई। कोई ऐसा व्यक्ति तो मिला, जिससे अपनी बात कह पाया। और आपने मेरी बात गंभीरता से सुना भी। अगर कोई दिक्कत हुई हो तो इसके लिए सॉरी।"

मैने कहा: "कोई दिक्कत नहीं हुई। मैंने भी बहुत कुछ सीखा आपसे। यह समझ पाया कि जमीनी हकीकत क्या है और लोग किस तरह से इसको बाहरी दुनिया में परोसते हैं। मेरा यहां आने का एक-एक मिनट सार्थक रहा। आपके सच का सहचर बना। आप मेरी व्यर्थ चिंता न करें।"

तब तक एक महिला एक बेंत की टोकरी में एक लाल रंग की ऊनी चादर लेकर आई। नागा वह चादर लेकर मेरे शरीर पर रख दिया। बोला: "हमारे यहां बुनने का काम महिलाएं करती हैं। चादर के डिजाइन से पता चल जाता है कि यह किस नागा के द्वारा बनाया गया है। इससे यह भी पता चलता है की जिसके लिए बनाया गया है उसका समाज में क्या अस्तित्व अथवा स्थान है। वह व्यक्ति परिवार का है, अतिथि है, समूह का नेता है, या क्या है। उदाहरण के लिए यह चादर हमारे 212 गांव के नागा सरदार के लिए बना है। हमने आपके बारे में बहुत सुना था। आज जब मिले तो लगा आप उससे भी अच्छे हो। अतः हम लोग आपका वैसा ही सम्मान करना

चाहते हैं जैसा यहां के सबसे शक्तिशाली नेता का। आप इसे स्वीकार करें।"

मेरा मन पुलकित हो गया। लग रहा था यह क्या हो रहा है! मैंने बिना कुछ कहे ही गर्दन झुकाकर अपनी विनम्रता प्रदर्शित की। कभी-कभी मन के भाव को प्रदर्शित करने के लिए शब्द छोटे पड़ जाते हैं। भाव शब्द की सीमा से काफी बड़े हो जाते हैं। फिर जो आपके शरीर और अंगों के हाव-भाव होते हैं, वे जरूर अपने अर्थ स्वतः प्रमाणित करते हैं। इसके बाद नागा मुखिया मुझसे गले मिला, फिर हाथ मिलाकर बाहर निकल गया।

नागा मुखिया के जाते ही दो **महिलायें** और एक पुरुष पुनः भीतर आए। वे इशारे से मुझे बताकर मेरे दोनों आंखों में पुनः पट्टी बांधने लगे। इस प्रक्रिया में मैं अच्छी तरह से उनकी विवशता समझ पा रहा था। उनको डर मुझसे नहीं अपितु व्यवस्था और प्रशासन से था।

ठंड अधिक थी। मैंने नागा चादर ओढ़ लिया था। गाड़ी अपनी रफ्तार से दौड़ रही थी। पहाड़ी इलाकों में चाहकर भी बहुत गति की कल्पना नहीं कर सकते। अनुभव मात्र कर सकता था कि सड़क सही नहीं थी। गाड़ी का चालक बहुत चतुर था। लगभग आधी यात्रा करने के बाद एक जगह रोककर मेरे आंखों की पट्टी खोल दी गई। अब मैं सभी कुछ देख सकता था। जो लोग गाड़ी पर पहले से थे, अब वे वहां नहीं थे। शायद सुरक्षा की दृष्टि से ऐसा किया गया होगा। इससे मुझे कोई भी फ़र्क नहीं पड़ता था।

कुछ देर चलने के बाद एक **ढाबे** पर हम लोग रुके। चाय **पी** और चाय के साथ बिस्कुट भी ले लिया था। वे लोग मुझे कुछ खाने के

लिए आग्रह कर रहे थे, लेकिन मेरा मन खाने के लिए तैयार नहीं था। एकाएक एक ठेला में बहुत बड़े-बड़े बेर लेकर एक आदमी आ गया। बिलकुल सेब की तरह इतना बड़ा और आकर्षक बेर **मैंने** भारत में कहीं नहीं देखा था। बेर और हरे सेब में अंतर करना मुश्किल हो जाय, इस तरह का था यह बेर।

मैं बेर की ओर आकर्षित हुआ। हाथ से छूने लगा। फिर जिज्ञासा से पूछा: "यह कौन फल है?"

ठेले वाला बोला: "यह बर्मा का बेर है।"

मैने पूछा: "अच्छा। इतना बड़ा बेर?"

ठेले वाला: "जी सर**! यहाँ** बेर बहुत बड़ा **मिलता** है। बर्मा से यहां आता है। आप मोइरांग जाकर दिनभर का वीजा लेकर बर्मा जा सकते हैं और वहां से खुद बेर खरीद सकते हैं। वहां के लोग भारत दिनभर के लिए आते हैं और भारत के लोग दिनभर के लिए बर्मा। बर्मा में लकड़ी के बने समान, हाथी दांत के बने समान एवं अन्य सामान भारत की तुलना में काफी सस्ते हैं।"

मैंने एक किलो चुनकर बेर खरीद लिया। मेरे साथ जो नागा मित्र थे वे ठेले वाले को पैसे देने लगे, लेकिन मैंने नहीं देने दिया। अब हम लोग पुनः अपने गंतव्य के लिए चल पड़े। गाड़ी ने तेजी पकड़ ली। हम चले जा रहे थे। झूम के खेत ऐसे लग रहे थे जैसे प्रकृति किशोरी ने अपनी बेनी को अलग-अलग गुच्छों में अलंकृत किया हुआ हो। धरती की हरितिमा देखने लायक थी। पहाड़ी पर ऐसा लग रहा था जैसे हरे मखमल बिछे हो। मुझे ऐसा लग रहा था कि भारत में केवल कश्मीर ही स्वर्ग नहीं है। सही अर्थ में, भारत में स्वर्ग का श्रृंखला है। आपको उन श्रृंखलाओं को ढूंढना होगा। उनमें से एक मुझे अनायास यहां मिल गया। एक नॉर्थ कछार हिल्स में

मिला था। आगे न जाने कितने और मिलेंगे। भगवान से प्रार्थना करता हूं **कि** मैं सतत अपनी ज्ञान यात्रा में संलग्न रहूं और उत्तर-पूर्व भारत का चप्पा-चप्पा ढूंढ लूं।

बेर खाने का लालच मैं नहीं रोक पा रहा था। गाड़ी में कुल चार लोग थे और बेर छह। मैंने एक-एक बेर सभी के हाथ में दे दिया। सभी लोगों ने नैसर्गिक मुस्कान बिखेरते हुए बेर लेकर खाना शुरू कर दिया। बेर का स्वाद सच कहूं तो मुझे जंचा नहीं। बिलकुल फीका था। फिर याद आया राजस्थान का वह नजारा जिसमें एक राजस्थानी मित्र कह रहे थे कि अगर बेर में मिठास और स्वाद चाहते हैं तो छोटे बेर खरीदें। राजस्थान में छोटे बेर इसीलिए मंहगे होते हैं। खैर! बर्मा का बेर इतना भी खराब नहीं था। लेकिन दूसरा खाने का मन नहीं किया। मेरे साथ के लोगों के प्राकृतिक मुस्कान पर क्या लिखूं। निश्चल और चिंतामुक्त मुस्कान। ऐसा कि देखकर आपका दिन सुदिन हो जाए। वैसे लोग, जो पहली बार उत्तर-पूर्व की यात्रा कर रहे हैं, उनसे एक बात का मैं आग्रह करूंगा कि वहां के लोगों के मुस्कान का अवलोकन करें। आप अंदर से प्रसन्न हो जायेंगे। गाड़ी चलती रही। अंततः मेरे गंतव्य से लगभग डेढ़ किलोमीटर पहले एक सुनसान जगह पर उन लोगों ने मुझे उतार दिया। हाथ मिलाकर पुनः वही नैसर्गिक मुस्कान बिखेरते हुए चले गए। मैं उनके चार्म में इतना खोया हुआ था कि पैदल ही वहां से अपने होटल में आ गया। दूरी कब **पूरी** कर **ली** पता ही नहीं चला। अब नित्यकर्म के बाद अपने को कुछ और काम के लिए तैयार करना था।

5

हॉर्नबिल उत्सव

चलिए आज हॉर्नबिल फेस्टिवल या हॉर्नबिल उत्सव की बात करते हैं। बात को तनिक विस्तार से समझना होगा। इसके माध्यम से ही मेरा प्रवेश नागा संसार में होता है। पृष्ठभूमि को स्पष्ट करना अनिवार्य है।

इतना तो स्पष्ट है कि नागा जनजाति स्वभाव से मस्त मलंग और उत्सवजीवी होते हैं। अगर जीवन का रंग, श्रृंगार, मस्ती, उल्लास देखना है तो नागा लोगों के साथ रहिए आप अलग संसार में रहने लगेंगे। एक नागा युवा कहने लगा: "हमारे लिए लंबी आयु की कोई प्रधानता नहीं है। हम जीवन में मस्ती खोजते हैं। नागा बहुत दिन तक अर्थात बुढ़ापे तक नहीं जीना चाहता। वह मस्ती और रोमांस में जीना चाहता है। इसके लिए उत्सव, अनुष्ठान, गीत, नृत्य, खेल, आखेट, पेंटिंग, लकड़ी पर उत्कीर्ण करने का कार्य, अनेक प्रकार के भोजन का निर्माण, युद्ध कौशल, वर्नाकुलर आर्किटेक्चर, जड़ी-बूटियों का खोज और उनका प्रयोग, देशी बीयर का सेवन, प्रेम सबसे महत्वपूर्ण चीज या कार्य है। नागा को अपनी भूमि और अपनी परम्परा और उत्सव बहुत पसंद है। इन्हीं उत्सवों में एक उत्सव है हॉर्नबिल फेस्टिवल। हॉर्नबिल उत्सव हॉर्नबिल पक्षी के नाम पर है। हॉर्नबिल एक खूबसूरत पक्षी है। यह मध्यम कद का होता है और बहुत ऊंचाई तक उड़ता है। इसका चोंच बहुत

लंबा होता है और प्रारंभ से लगभग अस्सी प्रतिशत हिस्सा पीला और बीस प्रतिशत काला होता है। इसके पंख भी बेहद आकर्षक होते हैं। अगर आप हॉर्नबिल पक्षी के स्वरूप और रूप-रंग देखेंगे, तो इसके मनोहारी स्वरूप को देखकर आपको ऐसा लगेगा कि फुरसत के क्षण में मकबूल फिदा हुसैन साहब ने एक बेहद नायाब पेंटिंग का निर्माण कर उसे प्रदर्शनी में लगा दिया है।"

बहरहाल, बात नवम्बर 2007 की है। मैं अरुणाचल प्रदेश के बोमडिला, दीरांग और तवांग तीन जगहों पर विस्तृत सांस्कृतिक संरक्षण और दस्तावेजीकरण का कार्य कर रहा था। तवांग में हम लोगों के कार्य का निरीक्षण और संवर्धन के लिए डॉ कल्याण कुमार चक्रवर्ती महोदय जो कि उस समय इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, दिल्ली के सदस्य सचिव थे, आए थे। वे हम लोगों के उत्साह और कार्यशैली से बहुत प्रसन्न थे। एक दिन, रात में उन्होंने मुझे बताया कि नागालैंड के आर्ट और कल्चर डिपार्टमेंट के डायरेक्टर डॉ. ए लोंगकुमार खुद नागा समुदाय से हैं और वे चाहते हैं कि हम लोग उनके साथ नागा जनजातियों पर और नागालैंड पर गहन कार्य प्रारंभ करें। मेरे साथ एक महिला सहकर्मी थी। उनके पिता Anthropological Survey of India में बहुत दिनों तक कार्यरत थे। जब भारत सरकार ने भोपाल में म्यूजियम ऑफ मैनकाइंड का निर्माण किया तो उनके पिता उस अद्भुत परिकल्पना को साकार करने के लिए उस संस्था के पहले डायरेक्टर बने। अंततः वे उत्तराखंड यूनिवर्सिटी में मानवविज्ञान के प्रोफेसर और अध्यक्ष भी रहे। महिला सहयोगी के बारे में यह जानकारी देना अनिवार्य इसीलिए है कि एक महिला और अविवाहित महिला होने के बाद भी

दुर्गम से दुर्गम और खतरों से भरे क्षेत्र में भी वह सदैव मेरे साथ जाने के लिए मेरे से पहले तैयार रहती थी। शायद उसके जेनेटिक प्रॉपर्टी या डीएनए में पिता के गुण, जोश और अनुभव शामिल थे। उनके बारे में यह भी स्पष्ट करना जरुरी है कि वह अवस्था में मुझसे दो महीने छोटी थी परन्तु संस्थान में मुझसे वरिष्ठ थी फिर भी प्रबंधन का मुखिया मैं ही था और उन्होंने कभी भी मेरे किसी भी निर्णय का विरोध नहीं किया। उनमें केयर करने का गजब का ज़ज्बा था। किसी भी परिस्थिति में रहने के लिए तैयार रहती थी।

महिला सहकर्मी के संबंध में एक संस्मरण का जिक्र करना अनिवार्य है। एकबार हम लोग गुवाहाटी से अरुणाचल प्रदेश की राजधानी ईटानगर टैक्सी से जा रहे थे। वहाँ एक जगह है बन्दरदेवा। बन्दरदेवा के फ़ॉरेस्ट अतिथि गृह में हम लोगों के लिए रहने की व्यवस्था पहले से निश्चित थी। इसकी सूचना बंदरदेवा फोरेस्ट गेस्ट हाउस के अधिकारियों को दे दिया गया था। हम लोग बन्दरदेवा फ़ॉरेस्ट गेस्टहाउस करीब 10 बजे रात्रि में पहुंचे। संयोग से फ़ॉरेस्ट गार्ड मदिरा पीकर सो गया था। मूसलाधार बारिश हो रही थी। ठण्ड ऐसी कि हड्डी गल जाए। अगल-बगल में जंगल ही जंगल थे। कहीं कोई होटल या रहने की अन्य व्यवस्था नहीं थी। हम लोग गाड़ी का हॉर्न बजाते रहे लेकिन गार्ड नहीं जगा। अब क्या हो? मुझे अपने से अधिक उनकी की चिंता हो रही थी। लेकिन मेरी महिला सहकर्मी वीर स्त्री बनी बिलकुल शांत थी। मेरी ओर कुटिल मुस्कान बिखेरती वह बोली: “चिंता मत करो। हम लोग जब कार्य पर निकले हैं तो यह सामान्य बात है। हमें विपरीत परिस्थितियों में रहने और कार्य करने की आदत डालनी होगी।” यह कहते हुए मेरी महिला

सहकर्मी गाड़ी के ड्राईवर को अपना छाता निकालकर देते हुए बोली: "पीछे से मेरा बैग ले आओ।" ड्राईवर बैग ले आया। **वह** उसमें से एक कम्बलनुमा चादर निकाल ली और अपने साथ मुझे भी ढक दी। ठण्ड अभी भी लग रही थी। हम लोग बातें करते रहे। बारिश होती रही। नाईट गार्ड कहीं धुत्त होकर सोता रहा। बीच-बीच में ड्राईवर हॉर्न बजाता रहा। सुखद संयोग यह था कि आते समय रास्ते में हम लोगों ने ढ़ाबे में भोजन कर लिया था। ड्राईवर भी बहुत ही शांत चित्त का व्यक्ति था। उसे हम लोगों के साथ चलने में आनंद मिलता था। वह भी एक कम्बल निकाल कर गाड़ी में बैठा रहा। हम तीनों में कोई भी सो नहीं रहा था क्योंकि हिंसक जानवरों के आक्रमण का खतरा भी था। **कार की** हेडलाइट **जली हुई थी**।

करीब चार बजे सुबह गार्ड जगा। होश में आया। मुख्य गेट के सामने खड़ी हमारी गाड़ी को देखकर उसके होश उड़ने लगे। वह दौड़कर गेट पर आया और जल्दी-जल्दी गेट खोल दिया। ड्राईवर उस पर चिल्ला पड़ा। मेरी महिला सहयोगी ने शांत भाव से ड्राईवर को रोक दिया। गार्ड अपना सर नीचे किया हुआ था। डर उसके रोम-रोम से प्रगट हो रहा था। वह उसके पास गयी। बोली: "आपको मालूम था कि हम लोग रात में आने वाले हैं?"

गार्ड बोला: "जी मैडम, मालूम था। बहुत बारिश हो रही थी, पता नहीं मैं कब सो गया। मुझको माफ़ कर **देगा न** आप? अब ऐसी गलती नहीं करेगा!"

महिला सहयोगी: "डरो मत। पहले हम लोगों को कमरा दिखाओ।"

गार्ड तेज कदमों से कमरे की ओर चलने लगा। हम लोग उसके पीछे-पीछे चलने लगे। कमरे बहुत बड़े और सुविधा संपन्न थे। दोनों **कमरों** में पहले से लकड़ी के अलाव जल रहे थे। ऋचा बोली: "चाय मिल जाये**गी** क्या?"

गार्ड: "जी मैडम**,** अभी लाता हूँ।" यह कहते हुए वह केयरटेकर के पास गया। कुछ ही देर में बिना दूध **की** चाय लेकर आया। उस चाय में हम लोग अमृत का स्वाद चख रहे थे। ड्राईवर को भी उसका कमरा मिल **चु**का था। गार्ड अभी भी डरा हुआ था। मैं चुपचाप मेरी महिला सहकर्मी के निर्देशों का पालन कर रहा था। वह भांप गयी कि गार्ड बहुत अधिक डरा हुआ है। बोली: "कोई बात नहीं। जो गया सो हो गया। हम लोग कोई शिकायत नहीं करेगा। आगे से ख्याल रखना। ठीक है?" गार्ड कृतज्ञता से सिर हिलाते हुए चला गया।

महिला सहकर्मी के बारे में इतना लिखना जरुरी है क्योंकि संस्मरण में बार-बार इस अतुलनीय मित्र का जिक्र आता रहेगा। उनके के बिना उत्तर-पूर्व भारत को समझना मेरे लिए असंभव था।

पुनः उस बिंदु पर आते हैं, जहाँ डॉ चक्रवर्ती ने डॉ. ए लोंगकुमार के निवेदन को देखते हुए अरुणाचल भ्रमण के दौरान हमे नागालैंड में कार्य करने के लिए अपना विचार दे रहे थे। मैंने डॉ ऋचा से इस विषय पर बात की। मेरी महिला सहकर्मी यह बात सुनकर ख़ुशी से झूमने लगी। बोली: "जरुर करना है यह कार्य। अपने पिता से नागा समाज का अनेक संस्मरण सुन चुकी हूँ। उनके साथ मिलने और उनको समझने का यह उत्तम अवसर है।"

मेरा काम अब सहज हो चुका था। हम लोग डॉ चर्कवर्ती के पास गए। हमने उन्हें बता दिया कि हम शीघ्र ही डॉ ए. लोंगकुमार से

बात करके नागालैंड पर कार्य योजना बना लेंगे और कार्य करना शुरू कर देंगे। दिल्ली जाने के बाद हम लोग पहले नागालैंड के लिए एक पायलट यात्रा करेंगे जिससे सभी बात स्पष्ट हो सके। इस बात से डॉ चक्रवर्ती सहमत थे। वह बीच में बोल पड़ी: "क्यों न कैलाश और मैं **यहीं** से नागालैंड चले जाएँ! इससे समय बच जायेगा। यहाँ से हम लोग गुवाहाटी जाकर वहाँ से दीमापुर के लिए जहाज पकड़ लेंगे। आपको अगर मेरा सुझाव सही लगे तो एकबार आप डॉ ए लोंगकुमार को इसकी अग्रिम जानकारी दे दें।"

डॉ चक्रवर्ती मेरी महिला सहकर्मी के सुझाव और उत्साह से बहुत खुश हुए। उन्होंने **तुरंत** डॉ ए लोंगकुमार को फोन लगाया और हम लोग वहाँ पहुँच रहे हैं इसकी जानकारी दे दी। मुझसे भी उन्होंने उनसे बातचीत करा दिया। तवांग से हम लोग गुवाहाटी आ गए। वहाँ से डॉ चक्रवर्ती दिल्ली चले गए। मैं अपनी महिला मित्र के साथ दीमापुर चला गया। डॉ लोंगकुमार को सभी जानकारी थी। दीमापुर हवाई अड्डे पर वे हमारे लिए प्रतीक्षा कर रहे थे। दो नागा लड़की उनके साथ थी। दोनों ही अतीव सुंदरी। उन दोनों ने हम लोगों का स्वागत पुष्प गुच्छ देकर किया। दोनों का मृदुल मुस्कान देखकर मन पुलकित था। हम लोगों के पहुंचने से पहले ही डॉ लोंगकुमार ने हम लोगों के लिए इनर लाइन परमिट बना दिया था। बता दूँ कि असम छोड़कर उत्तर-पूर्व भारत के सभी राज्यों में प्रवेश करने के लिए इनर लाइन परमिट का होना अनिवार्य है। यह परमिट दिल्ली में उस राज्य के नाम के भवन से, वहाँ के एअरपोर्ट पर पहुंचने के बाद अपना वैध प्रमाण-पत्र, यात्रा का उदेश्य आदि बताकर लिया जा सकता है। गुवहाटी और कोलकाता में भी सभी उत्तर-पूर्वी राज्यों का

कार्यालय है, जहाँ से रेजिडेंट कमिश्नर यह इनर लाइन परमिट इशू करते हैं।

बहरहाल! हम लोग दीमापुर से कोहिमा, अर्थात नागालैंड राज्य की राजधानी के लिए डॉ लोंगकुमार के साथ चल दिए। डॉ लोंगकुमार बहुत ही आत्मीय अधिकारी होने के साथ-साथ नागा संस्कृति के बहुत ही जानकार व्यक्ति थे। उनके साथ चलने का अर्थ था रास्ते भर नागा की संस्कृतियों के बारे में परत-दर-परत ज्ञान अर्जित करना। यह हम दोनों, अर्थात मेरी महिला मित्र और मेरे लिए अत्यावश्यक भी था। हम बिलकुल अविद्या की अवस्था में थे। नागा संस्कृति के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। मैं तो यही मानता था कि नागा एक जनजाति है और जिसके लोग नागालैंड में रहते हैं। डॉ लोंगकुमार से जानकारी मिली की नागा के अन्दर तीस से भी अधिक उप जातियां हैं और सभी का अपना स्वतंत्र इतिहास, संस्कार, संस्कृति है। सभी अपनी भाषा और पहचान बनाये रखते हैं। नागालैंड में रहने के अलावा नागा लोग मणिपुर, असम, अरुणाचल में रहते हैं। और-तो-और म्यांमार में भी अच्छी-खासी संख्या में रहते हैं। इन सभी विविधताओं के होते हुए भी वे सभी एक सूत्र में **गुं**थे हुए हैं, वह सूत्र है – नागा मूल जाति।

बहरहाल, हम लोग कुछ देर में कोहिमा पहुँच गए थे। कोहिमा पहुंचकर डिपार्टमेंट ऑफ आर्ट एवं कल्चर के कैंपस में पहुंचे। वहाँ की सीनियर डायरेक्टर एक आओ नागा थीं। बुजुर्ग और बहुत मृदुल स्वभाव की महिला थीं वह। हम लोगों के वहां पहुंचते ही अपनी कुर्सी से उठकर हमारा स्वागत किया। हमने चाय पी और आगे का कार्यक्रम बनाने लगे। उस महिला अधिकारी ने यह भी सुझाव

दिया: "अभी नवम्बर का अंतिम सप्ताह है। आपलोग नागालैंड में अपना कार्य **हॉ**र्नबिल फेस्टिवल के डॉक्यूमेंटेशन से क्यों नहीं शुरू करते?"

मैंने कहा: "हम कुछ भी करने के लिए तैयार हैं। पहले यह जानकारी तो मिल जाए कि **हॉ**र्नबिल फेस्टिवल है क्या?"

नागा उच्च अधिकारी बोली: "यह उत्सवों का उत्सव है। यह महा उत्सव है। सात वर्ष में ही इस फेस्टिवल ने नागालैंड को एक अलग पहचान दी है। यह हमारी सांस्कृतिक धरोहर का अभिन्न हिस्सा बन गया है। इस फेस्टिवल में सभी प्रकार के नागा लोग सभी आयु, लिंग, वर्ग, क्षेत्र के नागा किसी-न-किसी रूप में अवश्य हिस्सा लेते हैं। यह खोयी हुई संस्कृति को पुनः स्थापित करने का सामूहिक यत्न है। इसमें आप नागा जीवन, इतिहास, व्यवस्था के सभी पक्ष का दर्शन कर सकते हैं।"

मुझे और मेरी महिला मित्र को लगा कि यह सही अवसर है कि हमें इस अवसर का फायदा उठाना चाहिए। हम लोग अब डॉ लोंगकुमार के साथ होटल जेफू चले गए। वहाँ हम कुछ देर के लिए रुके। लगभग आधे घंटे में डॉ लोंगकुमार अपने दल के साथ फिर हमारे पास आ चुके थे। अब हम लोग उस स्थल के लिए चल पड़े जहाँ **हॉ**र्नबिल उत्सव मनाया जाता है। यह स्थल रम्य पहाड़ियों के बीच विशाल भूखण्ड पर अवस्थित है। देखते ही मन प्रमुदित होने लगता है। तीन दिशाओं से मानो पहाड़ इसके सौन्दर्य को बढ़ा रहे थे। आप मैदान में कहीं भी खड़े हो जाएँ, तो आपको नृत्य करने का या गीत गाने का या उमंग में इतराने का मन करेगा। आपको लगेगा कि आप एक कलाकार हैं और एक एम्फीथियेटर पर

कार्यक्रम के लिए तैयार हो रहे हैं। स्टेज सुंदर से सजा है, दर्शक से थिएटर भरा हुआ है। उत्साह का मौसम है। हम वहाँ से प्रसन्न होकर और भी जगह घूमने गए। फिर उस जगह गए जहाँ कभी वर्रिएर एलविन रहा करते थे। उस घर को हेरिटेज गेस्ट हाउस बना दिया गया है। डॉ लोंगकुमार बोल रहे थे: "इस बार आप लोग अगर **हॉ**र्नबिल फेस्टिवल को कवर करने के लिए आते हैं, तो आप लोगों के रहने का इंतजाम इसी जगह में करेगे। आपसे ही इसका विधिवत शुरुआत करेंगे।

फिर हम अपने होटल में आ गये। हमने तु**रं**त डॉ चक्रवर्ती से बात की कि हॉर्नबिल फेस्टिवल का आंरभ 1 दिसम्बर से होना है। हम लोग इसका डॉक्यूमेंट तैयार करेंगे। आपकी उपस्थिति से हम लोग और अधिक उत्साह के साथ काम कर सकेंगे। डॉ. चक्रवर्ती हमसे सहमत होते हुए बोले कि वे ज**रू**र हमारे साथ नागालैंड आयेंगे, यद्यपि उनके लिए पूरे दस दिन रुकना संभव नहीं हो पायेगा। वे शायद दो या तीन दिन रह सकेंगे। उनके इस निर्णय से हम अति प्रसन्न थे। देर रात तक हमने हॉर्नबिल फेस्टिवल में क्या-क्या करना है, सभी इन सभी चीजों का विवरण बनाते हुए उसके लिए बजट भी तैयार कर लिए। सरकारी संस्थान में अकाउंट और प्रशासन का पचड़ा खतरनाक होता है। डॉ चक्रवर्ती यद्यपि दोनों विभाग के मातहत अधिकारी को यह निर्देश दे चुके थे कि कैलाश के प्रोजेक्ट पर जो भी आपत्ति है उस पर एक मीटिंग मेरे साथ करो और उसी समय उसका अंतिम स्वरुप देते हुए उसे फाइनल कर दो। इससे हमारा काम आसान हो चुका था। हालांकि कुछ दुश्मन भी अवश्य बन गये थे।

हम दूसरे दिन भी अनेक स्थानों पर घूमते रहे। कोहिमा लॉ कॉलेज के प्रिंसिपल से भी मुलाकात हुई। वे नागा अस्मिता को पुनर्स्थापित करना चाहते थे। हमने उनसे कहा: "आप मुझे प्रत्येक नागा समुदाय से एक लड़का और एक लड़की अपने कॉलेज से दें। मैं हॉर्नबिल फेस्टिवल के दौरान उनकी सहायता से हरेक नागा समूह की संस्कृति, लोकाचार और विशेषकर यूथ डारमेट्री की संरचना, उनके क्रियाकलाप, उनके निर्माण आदि पर उस समाज के बुजुर्ग और अनुभवी महिला और पुरुष से पूछकर जानकारी इकत्र करेंगे। इतना ही नहीं, हम चाहते हैं कि नागा परंपरागत कानून, समस्या का निदान, राजनितिक समावेश का भी प्रलेखन हो।"

लॉ कॉलेज के प्रिंसिपल महोदय ने हमें तत्काल आश्वासन दिया कि तुरंत प्रभाव से वे सुयोग्य लड़के और लड़कियों का चयन करना शुरू कर देंगे। सभी लोगों को चयनित कर देंगे, जिससे कार्य में किसी तरह की असुविधा न हो।

सभी काम सही दिशा में चल रहा था। समय की कमी हमारे लिए अवश्य चिंता का कारण था। फिर भी हम आश्वस्त थे कि स्थानीय़ लोगों और स्थानीय अधिकारियों के सहयोग से इस कार्य को व्यवस्थित रूप से कर लेंगे। अगले दिन हम लोग दिल्ली आ गए।

दिल्ली से पूरी तैयारी के साथ पुनः हॉर्नबिल फेस्टिवल से एक दिन पहले वहाँ पहुँच गए। काम करना शुरू किया। हमें लग रहा था कि हम परियों के देश में पहुँच चके हैं। पहली बार अनुभव किया कि नागा लड़कियां इतनी सुन्दर, स्वस्थ और विलक्षण होती हैं। वे बहुत बोल्ड भी होती हैं और खुले विचारों की तो होती ही हैं।

हेरिटेज विलेज में सुबह साढ़े आठ बजे से रात के आठ बजे तक उत्सव का माहौल होता था। सभी नागा उपजातियों का अपना अपना मोरुंग अर्थात डारमेट्री हाउस के मॉडल बने हुए थे। उसमें वर्नाकुलर आर्किटेक्चर के बेहतरीन उदहारण दिखाई देते थे। घर का अग्र भाग जानवरों के सींग, हड्डियों, पक्षियों के पंखों, कौड़ी आदि से सुसज्जित थे। सभी घरों में कुछ लड़के और लड़कियां आगंतुकों को समझाने के लिए गाइड के रूप में खड़ी रहती थी। उसमें पेंटिंग, कपड़े, चटाई, मिट्टी के **ब**र्तन, आभूषण, आखेट की समग्री, कृषि-यंत्र, युद्ध की सामग्री, अस्त्र सभी बहुत ही करीने से सजाये गए थे। वाद्य यंत्र और नृत्य के यंत्र तो थे ही।

मुख्य स्थान पर एक-एक नागा समूह को कभी मूल आदिवासी नृत्य, कभी मल्लयुद्ध के लिए, कभी विलुप्त होती स्थानीय क्रीड़ाओं के प्रदर्शन के लिए, कभी प्रेम गीत के लिए, कभी उत्सव विशेष में प्रयुक्त होने वाले गीतों के लिए और नृत्यों के प्रदर्शन के लिए बुलाया जाता था। वे सभी समूह बहुत ही सुचारू रूप से अपनी-अपनी प्रस्तुतियों से लोगों का मनोरंजन करते रहते थे। साथ-ही-साथ, उनका एक प्रतिनिधि उन कलाओं के बारे में संक्षिप्त विवरण भी अंग्रेजी में प्रस्तुत करता रहता था। यह उत्सव ज्ञान के आनंद का उत्सव था मेरे लिए। मैं नागा संसार में डुबकी मार-मार के निहाल हो रहा था। मेरी महिला मित्र भी कम उत्साह में नहीं थी।

कार्यक्रम में अनेक स्तर थे। नागा व्यंजन का भी प्रदर्शन था। अनेक तरह के बाँस, जड़ी, बेर, कंद, सब्जी, मांस, लंका आदि के आचार थे। मांस के अनेक प्रकार भी थे। आप जो चाहे, पैसे देकर चख सकते थे। खा सकते थे। सभी नागा वस्त्र, चादर, गहने, कृषि

यंत्र, दाव या कत्ता(एक प्रकार का खुखरी या खंजर), तीर, धनुष, भाला, सजाने की समग्री का दुकान लगे हुए थे। लोग आनंदित होकर देख रहे थे। खरीद भी रहे थे। सभी जगह हॉर्नबिल पक्षी का विशालकाय स्वरुप तैयार किया गया था। जहाँ कार्यक्रम हो रहे थे, वहाँ नागा युद्ध-कौशल का भी नमूना अलग-अलग नागा प्रस्तुत कर रहे थे। किस तरह से नागा अपने पितरों का आह्वान करते हैं, इसका सुन्दर दर्शन प्रस्तुत किया जा रहा था। सच कहूँ, तो यह नागा संसार का विश्व ज्ञान का दर्शन था। शब्दों से कैसे बखान करूँ!

एक दिन सायंकाल पता चला कि वस्त्रों और गहनों का प्रदर्शन कैटवाक के द्वारा होगा। देखने गया तो देखने ही लगा। नागा युवक और युवती परम्परागत परिधान और गहनों से सुसज्जित होकर इंद्र की परियों को और कामदेव को चिढ़ा रहे थे। लग रहा था स्वर्ग यही है। बीच-बीच में नागा युवती अपनी मधुर तान से वातावरण को पवित्र करती रहती थी। पवित्रता में प्रेम का तड़का लगा हुआ होता था।

कुछ ही देर में, मिस नागालैंड की प्रतियोगिता होना तय था। मन मयूर नाचने लगा। देखा लड़कियां सज-धज के बहुत बड़े कतार में रंगमंच की ओर आ रही हैं। उधर ध्यानपूर्वक देखने लगा। मेरी महिला मित्र एक सफल फोटोग्राफर की तरह एक-एक दृश्य को अपने कैमरे में कैद कर रही थी। मैंने अपने आँखों और मस्तिष्क को ही कैमरा बना दिया था। एक-एक मूवमेंट को कैद करने लगा। लड़कियों का चलना, बोलना, कपड़े पहनने का अंदाज, अपनी संस्कृति का ज्ञान, उस ज्ञान को अंग्रेजी में सम्प्रेषण सब कुछ अद्भुत था – न पहले देखा था, न ही उसके बाद देखा। मैंने पहले ही कह

दिया था न कि शब्द मौन हो गए हैं भाव को व्यक्त करने में। नागा लड़कियों के शरीर की बनाबट बेजोड़ होती है, शरीर के हरेक अंग का अनुपातिक विकास, उतार-चढ़ाव, उनके शरीर के चमड़े में चमक, एक अलग तरह की गोराई, आंखें बेशक बहुत बड़े नहीं होते और नाक बहुत लंबे नहीं होते लेकिन उसमें रस का अनुपम प्रावधान होता है। उनके खुद के बने काजल के लगते ही उनकी वो आँखें मादक बन जाती हैं। वस्त्र उनके शरीर पर चढ़ते ही और अधिक खिल उठते हैं। नायिका को आनंद की अनुभूति होती है, जब कोई उनके सौंदर्य को निहारता है। लड़कों का आह भरना मानो उनको द्विगुणित आनंद देता है। नागा लड़कियां और लड़के अपने कथ्य को अंग्रेजी में बहुत ही मुखर होकर व्यक्त करते हैं। प्रेम उनके लिए जीवन का आवश्यक हिस्सा है। वे प्रेम के प्रजातंत्र में विचरण करने वाले उन्मुक्त मानव और मानवी हैं। हाँ, उनके प्रेम में छल, कपट, अहंकार, दिखावा नहीं होता। उनका प्रेम निरापद रूप से केवल निश्चल प्रेम होता है।

कुछ नागा बुजुर्ग स्त्री-पुरुष अप**नी** जड़ी-बूटी के परम्परागत ज्ञान का प्रदर्शन कर रहे थे। एक दम्पति यह दावा कर रहे थे कि एक विशेष जड़ी और पुष्प के प्रयोग से युवा और युवती जब तक न चाहे तब तक गर्भ धारण नहीं कर सकते। कैंसर जैसे महामारी की रोकथाम के लिए भी औषधि उपलब्ध थी। चावल की एक ऐसी **किस्म** का प्रदर्शन किया गया था जिसको चूड़े की तरह पानी में **भि**गोकर खाया जा सकता था। वहाँ यह भी पता चला कि नागा 300 से अधिक तरह के धान उगाते रहे हैं।

कार्यक्रम को वैश्विक बनाने के लिए अन्य राज्यों के अन्य आदिवासी कलाकारों को भी बुलाया गया था। बीच-बीच में उनका कार्यक्रम एक अलग तरह का लुत्फ़ दे रहा था।

स्पष्ट कर दूँ कि कोहिमा लॉ कॉलेज के प्रिंसिपल ने अपने वादे के अनुरूप मेरे लिए 17 नागा युवक और 17 युवतियों का चयन कर दिया था। वे सभी बहुत उत्साहित होकर अपने अपने जाति के बुजुर्गों से परम्परागत कानून, नागा इतिहास, खान-पान, यूथ डारमेट्री के बारे में विस्तृत जानकारी इकत्रित कर रहे थे। प्रतिदिन सायंकाल वे मेरे पास आते, अपने अनुभव बांटते और कुछ शंका हो तो उसका समाधान खोजते। उन्हें पैसे से अधिक इस बात की प्रसन्नता थी कि वे अपने समाज के बारे में विज्ञ हो रहे थे। उनका नागा होना चरितार्थ हो रहा था। जीवन की गति के साथ मैं भी गतिशील हो रहा था। लग रहा था कि इस भारत वर्ष में नागाओं का समूह इतना खुबसूरत समूह है, जिसके बारे में हम भारत के लोग अभी तक क्यों नहीं जान सके हैं और आगे क्यों नही जानना चाहते हैं, इस बात से मैं आश्चर्यचकित हो रहा था!

6

भैषज्य नमक और चिकित्सा

— भाग 1 —

काम करने और समझने का अनुभव बहुत हैं। मन अकुलाहट में है कि मन का भड़ास लिख दूँ। जानता हूँ कभी-कभी बातों और घटनाक्रम को ऐतिहासिक कसौटी पर क्रमवार नहीं लिख पाता। मन का सुनना और फिर लिखना वह भी ईमानदारी से लिखना एक सुखद अनिभूति अवश्य देता है। जब मित्र और पाठक पढ़ते हैं, अनुभव के लेखन को पसंद करते हैं तो मन और आनंदित हो जाता है। हॉर्नबिल उत्सव के हैंगओवर से अभी मुक्त नहीं हुआ हूँ। एक-एक प्रसंग पर ठहर जाता हूँ। लगता है एक-एक विवरण लिखूं। फिर एक भय यह भी है कि पाठक कहीं पढ़ने में लय न खो दें। चेतन और गंभीर मन कहता है कि ईमानदारी से और संक्षिप्त होकर लिखना ही श्रेयस्कर होगा।

पुनः हॉर्नबिल उत्सव पर आता हूँ। इस उत्सव में हम सभी रम गए थे। वादे के अनुसार डॉ कल्याण कुमार चक्रवर्ती भी प्रारंभ में ही कोहिमा पधार चुके थे। उन्हें तीसरे दिन वापस दिल्ली जाना था। वे अपना एक-एक मिनट हम लोगों के साथ बिताने लगे। एक-एक नागा समाज के बुजुर्गों से, कलाकारों से, जन प्रतिनिधियों से मिलकर वे उनकी परम्परा के हृदय में प्रवेश करना चाहते थे।

अनुभव को अपनी डायरी में विस्तार से लिखते जा रहे थे। उनसे बहुत कुछ हम सीख रहे थे। शायद बिना कुछ कहे वे गुरु की भूमिका मेरे लिए ईमानदारी से निभा रहे थे। नागा युवक और युवतियां जिनका चयन हमने उनकी परम्परा को लिखने और समझने के लिए किया था, सभी डॉ चक्रवर्ती से प्रभावित थे। डॉ चक्रवर्ती कम समय में कितना अधिक प्रमाणिक डाटाबेस तैयार किया जा सकता है, इस ज्ञान के स्टोर हाउस थे।

जड़ी-बूटी वाले नागाओं का दल मुझे बहुत आकर्षित कर रहा था। उनमें बहुत खास था हम लोगों को सिखाने और समझाने के लिए। वे तरह-तरह की जड़ी बूटियों से कंद-मूल से एवं अन्य पदार्थों से अनेक भैषज्य का निर्माण कर अनेक तरह की रोगों का इलाज करने का दावा कर रहे थे। स्थानीय लोगों को उनके दावे में कहीं भी कोई शंका नहीं थी। जो जड़ी-बूटियों के विशेषज्ञ थे। वे मनोवैज्ञानिक बातों को भी जानते थे। उनके लिए चिकित्सा केवल भैषजीय मिश्रण का देना ही नहीं है। चिकित्सा एक समाजिक व्यवस्था है, जिसमें चिकित्सक एक रोगी की मनःस्थिति को समझने का प्रयास करता है। चिकित्सा में भूत-प्रेत, जादू- टोना, मन्त्र, यंत्र, पूर्वजों का आशीर्वाद, देवी और देवताओं की कृपा, गान, नृत्य, बलि-प्रदान और न जाने क्या-क्या सम्मिलित है। दवाई को कब देना है, कैसे देना है, किस दिशा में देना है, किस दिशा में नहीं देना है, किसके सामने देना है, किसके सामने नहीं देना है, उसका पथ्य और परहेज क्या है, इन सभी चीजों और निर्देशों को स्पष्ट किया जा रहा था। आस्था, चिकित्सा और इलाज के साथ ताल में ताल मिलाकर चल रहा था। मरीज और चिकित्सक के मध्य

विश्वास और आस्था प्रबल था। कोई किसी पर शंका करने की सोच भी नहीं सकता था।

हम लोगों के साथ प्रोफेसर आनंद चरण भगवती भी थे। प्रोफेसर भगवती मानवविज्ञान के पंडित थे। गुवाहाटी यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर थे। राजीव गाँधी केन्द्रीय यूनिवर्सिटी, ईटानगर के वाईस चांसलर भी रह चुके थे। निर्मल कुमार बोस के सानिध्य में रहकर उन्होंने बहुत कुछ सिखा था। किस्सागोई कला के बहुत बड़े महारथी थे प्रोफेसर भगवती। लिखते बहुत कम थे और बातें बहुत करते थे। उनके पास अनुभव का पिटारा था। उन्होंने उत्तर-पूर्व के आदिवासियों पर गहन कार्य किया था। हमने उन्हें भी अपने पास बुला लिया था। उनका साथ होना हमारे लिए संजीवनी बूटी के होने जैसा था। हरेक प्रकरण को वे समझ रहे थे। हमें जहाँ भी शंका हो हम उनके पास चले जाते। वे संकटमोचक बनकर हमारे लिए आ जाते। अपने अनुभव से और नागा से बात करके एक-एक गुत्थी को स्पष्ट करते। कहीं भी उन्होंने हमें भ्रम में नहीं रहने दिया। हमने अनुभव किया कि नमक को भी वहाँ के आदिवासी वैद्य जड़ी-बूटी ही मान रहे थे। नमक था भी कुछ अलग तरह का – गोलाकार या **ये** कह लीजिये कि गोल-गोल रोटी (चपाती) के जैसा। प्रोफेसर भगवती ने बताया कि यह समुद्री नमक नहीं है।

"फिर क्या है यह, सैंधा नमक?", मैंने पूछा।

प्रोफेसर भगवती: "नहीं यह **भैषज्य** नमक है। यह सभी अर्थ में अपने अंदर अनेक जड़ी-बूटियों को समेटे हुए है। यह स्थानीय नमक है। इसे इसके विशेष जल को विशेष स्थान में कुँए में डालकर फिर उस जल से बनाया जाता है।"

अब मैं उस युक्ति में लग गया कि इस **भैषज्य** नमक के बारे में जानूं कि आखिर यह है क्या और कैसे बनता है। यह प्रश्न मैंने एक नागा चिकित्सक या वैद्य से किया। वह बोला: "पहले तो यह नमक नागालैंड में भी बनता था लेकिन अब समुद्री नमक के आने के बाद यहाँ बनना बंद हो गया है। अभी भी यह नमक मणिपुर और असम के कुछ जगहों में बनता है। यह नमक हम लोग औषधि बनाने में प्रयोग करते हैं। यह पवित्र नमक है और औषधियुक्त भी।"

मेरा मन इतने से खुश नहीं था। मुझे इतना विश्वास तो अवश्य हो गया था कि नमक का इतिहास जरुर ही महत्वपूर्ण होगा। इसको किसी-न-किसी तरह से खोज निकालना है। हम इसके लिए लग गए।

भैषज्य ज्ञान के विस्तार और आयुर्विज्ञान में भी नमक का प्रयोग एक प्रमुख अवयव के रूप में होता रहा है। 2700 ई.पू. चीन में चिकित्सा पद्धति और **भैषज्य** ज्ञान की पाण्डुलिपि में चालीस प्रकार के नमक का वर्णन मिलता है जिसका उपयोग अनेक औषधियों के निर्माण में वहां के वैद्य या औषधि वैज्ञानिक किया करते थे। कुछ घुमक्कड़ प्रजाति के लोग नमक को ढोने और एक जगह से दूसरी जगह ले जाने एवं नमक के बदले अन्य भोज्य एवं उपयोगी वस्तु के आदान-प्रदान की क्रिया में दक्ष थे।

हम सूत्र ढूंढने लगे। फिर पता चला कि मणिपुर यूनिवर्सिटी के म्यूजियम में मेरी एक मित्र डॉ बिलासिनी देवी रहती हैं। उन्होंने **भैषज्य** नमक पर कार्य किया है। मेरे पास उनका नंबर था। मैंने उन्हें फोन किया। वे बहुत हर्षित हुई और कहने लगी "मणिपुर में अभी भी निंगेल नामक जगह है जहाँ नमक बनाया जाता है। आप

मणिपुर **आएं तो** मैं आपको विस्तार से पूरी प्रक्रिया बताऊंगी और इसके बारे में समझाऊंगी।"

अब मेरा काम आसान हो गया था। इतना अवश्य था कि नागालैंड से मणिपुर जाना और डॉ बिलासिनी देवी के साथ रहकर इस प्रक्रिया को अच्छी तरह समझना मेरे लिए अत्यावश्यक था। मैंने ठान लिया था कि इसको समझना ही है।

नागालैंड से वापस आते ही मैंने मणिपुर का टूर प्लान तैयार किया। डॉ चक्रवर्ती उसके लिए तैयार हो गए। मैं मणिपुर चला गया। डॉ बिलासिनी देवी से मिला। वह बहुत ही उदार और विनम्र महिला थी। मणिपुर के टेक्सटाइल परम्परा और नमक पर अच्छा कार्य कर रहीं थीं।

नमक का जिक्र आते ही कहने लगी: "नमक दुनिया का पहला विनिमय का प्रतिमान है। लोग पहले वेतन के बदले नमक दिया करते थे क्योंकि अनाज एवं अन्य सामग्रियों की तुलना में नमक कम देकर काम चलाया जा सकता था। यह तब की स्थिति है जब समुद्री नमक का इजाद नहीं हुआ था। अतः सैलरी शब्द साल्ट अर्थात नमक ने बना है। साल्ट से सलाद शब्द का विन्यास हुआ है। प्राचीन रोमन सभ्यता के लोग हरी और पत्तीदार सब्जियों (leafy vegetables) नमक के पानी में डुबोकर उसको जायकेदार बनाते थे। इस तरह से नमक के जल से भींगे पत्तीदार सब्जी को सलाद कहा गया। महात्मा गाँधी नमक आन्दोलन के बदौलत ही भारतीय राजनीती में आगे बढ़े और अंग्रेजों को जमकर टक्कर दे पाए।"

अब मुझे नमक का मह**त्व** समझ में आने लगा था। मैंने झारखंड के आदिवासियों को नमक के बदले महुआ के फूल,

चिरौंजी, लकड़ी आदि का विनिमय करते देखा था। मुझे लगने लगा की निश्चित ही नमक आदिवासी समाज को बाहरी समाज से जोड़ने में अहम भूमिका निभाया होगा। हम बात को आगे बढ़ाते गए।

पूर्वोत्तर भारत के लोग करीब 1300 वर्ष से लगातार एक विशेष जगह के पानी को इकट्ठा करके उससे **भैषज्य** नमक का निर्माण करते आ रहे हैं। इस नमक को स्थानीय भाषा में मैतेई थुम्बा कहा जाता है। यह प्राकृतिक रूप से आयोडाइज्ड, **भैषज्य** गुणों से पूर्ण, शाकाहारी, शुद्ध एवं स्वादिष्ट है। पूजन, भोज्य सामग्री, कर्मकाण्ड आदि में अभी भी इसी नमक का प्रयोग किया जाता है।

इसलिए प्राचीन समय में यहां समुद्री नमक मिलना सपने जैसा था। मृत पहाड़ नहीं होने के कारण प्रस्तर नमक जैसे सेंधा नमक की भी उपलब्धता नहीं थी। यहां के लोग प्रकृति में कुछ विशेष स्थान का खोज कर लिए थे, जहां पर लवणयुक्त पानी की उपलब्धता है और उस पानी से कुछ प्रक्रिया के बाद उत्तम क़िस्म के **भैषज्य** नमक का निर्माण किया जाता है। कुछ जाति विशेष के लोगों ने परंपरागत विधि से उस लवणयुक्त जल को संग्रह करना, उसे साफ करना, फिर अग्नि पर चढ़ाकर नमक बनाने की क्रिया में अपने को पारंगत किया है। ये न केवल नमक का निर्माण करते हैं, बल्कि उस नमक में भैषज्य, जड़ी-बूटी का प्रयोग करते हैं, नमक को एक निश्चित केक या प्लेट की आकृति का रूप भी देते हैं। सहजता से उपलब्ध कुछ चीजों का प्रयोग करते हैं जिससे नमक रवादार किंतु महीन और दूध की तरह सफेद और उज्जवल हो जाता है। यह नमक स्वाद में मीठा होता है और उच्च रक्तचाप से पीड़ित लोगों के लिए बहुत ही अच्छा है। अब यातायात की सुविधा हो जाने

के कारण, वैश्वीकरण के कारण और आधुनिकता के कारण यहां के लोग भी धीरे-धीरे इस नमक के व्यवहार को ख़त्म करते जा रहे हैं। यहां भी अब धड़ल्ले से विभिन्न ब्रांड के नमक का प्रयोग होने लगा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जो लोग इस प्रक्रिया में लगे थे उन्होंने इस काम को छोड़ दिया है। ऐसे में मात्र निंगेल गांव के 6-8 परिवार इस कला को संभाले हुए हैं।

निंगेल गांव चारों दिशाओं से पहाड़ियों से घिरा एक घाटीनुमा गांव है। इसे देखते ही लगता है, जैसे प्रकृति की गोद में कोई बच्चा निराकार भाव से बैठा है। निश्छल, सुन्दर, रम्य, छोटा गांव है निंगेल। हंसते लोग, प्रकृति के अवयव – पेड़, पौधे, झील, कुआं, तालाब, खेत-खलिहान, पक्षी, फूल और फल। निंगेल मणिपुर के थौबल जनपद में है और राज्य की राजधानी इम्फाल से करीब 31 किलोमीटर की **दू**री में पूर्व दिशा की ओर अवस्थित है।

यह नमक की कहानी का पूर्ण विराम नहीं है। अभी मैं अर्धविराम में ही अटका हुआ हूँ।

— भाग 2 —

बात **भैषज्य** नमक की कर रहे थे। मेरे गुरुजी प्रोफ़ेसर डी के भट्टाचार्य ने मुझे सुझाव दिया: "इस तरह के ज्ञान का अधिक दिनों तक रहकर एक-एक जानकारी का संकलन करोगे तो तुम्हारा श्रम साकार होगा।" मैंने इसी बात को ध्यान में रखते हुए डॉ बिलासनी देवी के साथ नमक पर कार्य करने के लिए बारह दिन का कार्यक्रम निर्धारित किया। उसका अंजाम सुखद था। कुछ स्थानीय

इतिहासकारों का मानना है कि बहुत से अलग-अलग हिस्से से लोग अनेक ऐतिहासिक कालखण्ड में मणिपुर आते गये और यहां आकर बसते गए। उन्ही लोगों में पश्चिमी प्रवासी लोगों का नमक बनाने वाले एक दल म्यांग क्लिचास (Mayang Kalichas) पश्चिमी सीमा से यहाँ घुसे। मान्यता है कि 2000 वर्ष पहले ये लोग समुद्री मछुआरे थे। इनको मछली पकड़ने और नमक बनाने का ज्ञान था। जैसे-जैसे समुद्र से दूर देश की ओर प्रवास करते गए विपरीत परिस्थिति में भी लवणयुक्त जल ढूंढकर नमक बनाना सीखते गए। पहली बार बराक और इरिल नदी को पार करते हुए यहां आकर लैमताक (Leimatak) नदी के किनारे अपना घर बनाया। इस प्रदेश के मैतेई इस समुदाय के लोगों को 'पंगलमार' कहते थे। यह समुदाय नमक बनाता और बेचता था, मैतेई और जनजातीय समुदाय के लोगों के साथ नमक के बदले में आवश्यक वस्तु जैसे फल, सब्जी, मांस, लकड़ी, अनाज, मसाला आदि का आदान-प्रदान भी करता था।

धीरे-धीरे इन लोगों ने अगल-बगल के 4 गांवों में अपना वास बना लिया। कहते हैं कि 930 ईस्वी में राजा एडऑन थिंकोल्होम्बा ने इन पर आक्रमण किया और जीत गया। बहुत लोगों को युद्धबन्दी बनाकर मणिपुर ले आया।

कालांतर में अनेक जगहों में **भैषज्य** नमक का निर्माण एक उद्योग के रूप में इस समाज के लोगों ने राजा पैखोम्बा (1666-97) के शासनकाल में प्रारम्भ किया। कालांतर में इस तरह के स्थान **की** खोज **की गयी** जहां पेड़, पौधे, घास, अन्य **भैषज्य** वनस्पति, खनिज, पत्थर आदि के साथ-साथ जल में पर्याप्त मात्रा में लवण का

हिस्सा व्याप्त था। अब पूरे राज्य में कहीं भी नमक का अभाव नहीं था।

पेम्बरटन (Pemberton) की रिपोर्ट (1835) के अनुसार, यहाँ अनेक प्रकार के खनिज के साथ-साथ नमक भी प्राकृतिक रूप में उपलब्ध था। जो सबसे उत्तम अथवा उपयुक्त स्थान नमक के लिए चिन्हित थे उनमें दुइखोंग, निंगेल, सेंगमेई और चुन्दरूखोंग प्रमुख **हैं**। इन सभी जगहों में, व्यापारिक रूप से बड़े स्तर पर राजा के निर्देशन में **भैषज्य** नमक का उत्पादन किया जाता था। इन लोगों अर्थात नमक बनाने वालों को प्रति घर नमक के उत्पादन और गुणवत्ता की दृष्टिकोण से राज प्रशासन को कर के रूप में राशि अथवा नमक देना पड़ता था। नमक को बाजार में बेचा जाता था और विभिन्न जनजातीय समुदायों से तंबाकू, सब्जी, फल, मांस, मछली, अनाज, लकड़ी, शहद, अदरख, आदि के बदले आदान-प्रदान की प्रथा भी देखने को **मिलती थी**।

जहां भी जल में लवण का आधार या **यह** कहें कि साल्ट बेस होता है, उस जगह की पहाड़ी से लवणयुक्त जल चारों दिशाओं से घाटी के गहरे क्षेत्र में एकत्रित होता रहता है। जल के साथ जड़ी-बूटी, जीवनरक्षक खाद्य खनिज आदि भी आते रहते हैं और जल में घुल-मिल जाते हैं। जहां पानी एकत्रित होता है, वहां पानी की उपलब्धता के अनुरूप एक से चार कूप बना**ये जाते हैं**। कूप का आकार अर्थात चौड़ाई बहुत कम **रखी जाती** है, परंतु गहराई 45 से 70 फुट तक होती है। वह क्षेत्र जहाँ लवणयुक्त पानी उपलब्ध होता है और कूप का निर्माण उस पानी को संजोने के लिए किया जाता है, उस स्थल को मेतेई भाषा में थुमखोंग कहते हैं। थुमखोंग दो शब्दों – थुम और

खोंग के मेल से बना है जिसका अर्थ क्रमशः नमक और कूप होता है।

जहाँ प्रातःकाल अत्यधिक भाप बने और भाप से चारों ओर अंधेरा छा जाए तो समझ लेना चाहिए कि वहां के पानी में साल्ट बेस है अर्थात झील के पानी में प्रचूर मात्रा में लवण के गुण व्याप्त हैं। नमक की मात्रा और उत्पादन का आकार जल की उपलब्धता पर निर्भर करता है।

गहरे कूप का निर्माण अतिवैज्ञानिक ढंग से जल के रखरखाव और शुद्धिकरण के लिए किया जाता है। स्थान के हिसाब से 45-70 फुट गहरा कूप खोदने के पश्चात उसमें उसी आकार के लकड़ी को बीचों-बीच सिलेंडर की तरह खोद कर उसमें डाल दिया जाता है। लकड़ी के बीच-बीच में अगल-बगल से भी हल्का छेद कर दिया जाता है, जिससे चारों तरफ से जल छनकर कूप में आता रहे और एकत्रित होता रहे। लकड़ी में भी औषधीय गुण होते हैं जो एकत्रित पानी में घुलता-मिलता रहता है और पानी की गुणवत्ता को प्रेरित करता है।

सामान्यतया कूप से जल निकालने और उसे नमक निर्माण के कार्यस्थल तक पहुंचाने का काम पुरुष करते हैं। पानी मिट्टी के घड़े (इशैफु) में भरकर लाते हैं और विशाल मटके में एकत्रित करते हैं। यहीं नमक बनाया जाता है। यह स्थान चारों तरफ़ से खुला होता है। छत में या तो खपरा या टिन का शेड होता है। एस्बेसटस भी हो सकता है। इस कार्यशाला की लम्बाई अधिक और चौड़ाई उस अनुपात में काफी कम होता है। कार्यशाला को 'थुम-शुंग-शांग' कहते हैं। थुम-शुंग-शांग का शाब्दिक अर्थ थुम अर्थात 'नमक', शुंग

अर्थात 'बनाने का' एवं शांग अर्थात 'छत'। दरवाजे पर मिट्टी के विशालकाय आयताकार चूल्हे में किसी भी दिशा से लकड़ी डाला जा सकता है। चूल्हे को थुम लेइरांग कहते हैं। चूल्हे के मुख्य द्वार से **ईंधन** दिया जाता है और जले हुए चारकोल (चमांग) को बाहर निकाला जाता है। कंटीले झाड़ी, वन्य लकड़ी आदि का प्रयोग जल को गर्म करने के लिए किया जाता है। नमक निर्माण की प्रक्रिया घर पर सामान्यतया महिलाओं के द्वारा की जाती है।

दो **चूल्हों** या थुम लेइरांग के मध्य पर्याप्त स्थान छोड़ने का प्रावधान है, जिससे नमक बनाने के कार्य में संलग्न महिला आसानी से उस स्थान में बैठकर अपने कार्य का संपादन दक्षता के साथ कर सके। किसी भी प्रकार का व्यवधान नहीं हो। दो **चूल्हों** के बीच के स्थान को 'फाम्बल' कहते हैं, जहाँ लोग बैठकर कार्य का संचालन करते हैं। कूप से जो पानी लाया जाता है, उसको विशाल मिट्टी के घड़े खारुंग में डालकर भण्डारण कर लिया जाता है। इससे नमक निर्माण के समय पर्याप्त मात्रा में पानी हमेशा कलाकार के पास सहजता से उपलब्ध रहता है। अब चूल्हे पर पानी को गर्म उच्च ताप पर किया जाता है। पानी को चूल्हे में गर्म होने के लिए चढ़ाने के पूर्व उसे साफ कपड़े से अच्छी तरह से छान लिया जाता है, जिससे नमक में किसी प्रकार की गन्दगी का प्रवेश न हो सके। सर्वप्रथम मिट्टी के बर्तन में ही या किसी अन्य बर्तन में पानी को रखकर उसको ताव पर चढ़ाया जाता है। जब पानी आधा भाप बनकर उड़ जाता है तब उसमें भिन्डी का बीज और कोई स्थानीय भैषज्य डाल दिया जाता है। इससे फेन बनकर सभी तरह की

गन्दगी बाहर आ जाती है। इसके बाद नमक बहुत सफ़ेद हो जाता है।

जब पानी सूखकर एक आठवें हिस्से के बराबर रह जाता है तब धीरे-धीरे इसमें नमक का स्वरुप दिखने लगता है। अग्नि के ताप को संचालित करने के लिए लकड़ी के बने डंडे अथवा मो**टी** लाठी की आकृति के एक उपकरण "मैफेई" का प्रयोग किया जाता है। इससे जले हुए राख और चारकोल को चूल्हे से बाहर निकालना, अन्य जलती हुई लकड़ी पर नियंत्रण करना, आंच को इच्छानुसार कम-अधिक करना आदि क्रिया का संचालन सहज हो जाता है। बैठने का स्थान, जिस मिट्टी के बर्तन में पानी को गरम किया जाता है, उसके अगल-बगल के स्थान, व्यवहृत कलछुल आदि को शीतल करने के लिए पीने का पानी अर्थात मीठा जल एक मिट्टी के बर्तन (चिलेनखुम) में रखा जाता है। अब इसको कुछ देर और गर्म करने के बाद छोटे बर्तन में डालकर लगातार कलछुल से चलाते रहना पड़ता है। इसका तात्पर्य यह है कि नमक बर्तन को कठोरता से पकड़ ना ले। कुछ देर के बाद मिट्टी या लोहे के उथले त**वे** अर्थात थुम कागोक पर गीले नमक को रोटी के आकार में बनाने की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है। पिघले हुए नमक को निकालने और तवे में डालने का कार्य जिस बर्तन से किया जाता है, उसका निर्माण "कोरेट" अर्थात पके हुए लम्बवत लौकी से किया जाता है। लौकी के पक जाने पर उसके गू**दे** को एक छेद करके निकाल लिया जाता है, फिर उसे धूप और छाँव में सुखाते हैं। यह धीरे-धीरे मजबूत बन जाता है। यह ताप का कुचालक होता है, अतः लगातार प्रयोग से भी कार्य करने वाले का हाथ नहीं **जल**ता है। साधारण-सा दिखने वाला

उपकरण असाधारण कार्य करता है। अवक्षेपित नमक को "काम्बी" अर्थात मिट्टी के एक प्लेट में एकत्रित किया जाता है।

केक को अंततः प्लेट की आकृति में परिवर्तित कर दिया जाता है। खाने वाले तेल से तवे के आधार को थोड़ा गीला कर दिया जाता है, जिससे नमक तवे से चिपके नहीं। कलात्मक आकार देने के लिए पीतल की छोलनी (चिलेल) का प्रयोग किया जाता है। लगातार अग्नि के संसर्ग में रहने से चिलेल गर्म होकर प्रयोग करने वाले को किसी प्रकार की हानि ना पहुचाये, इसलिए चिलेल में काष्ठ का हैंडल या डंडी लगा **दी जाती** है। इसके प्रयोग से नमक को इच्छित आकार में सहजता से परिणत किया जाता है। चेगाई अर्थात किसी खुर**दरी** चीज़ से, जो सामन्यतया किसी बर्तन (मिट्टी) का अवशेष होता है, नमक के रीम को खुरचते रहते हैं। नमक को बहुत ही कलात्मक आकार दिया जाता है। सामान्यतया तीन साइज में इसे बनाया जाता है – बहुत बड़ा, मध्यम कद का और चाय के प्लेट के समान छोटा। लगातार लकड़ी के बने कलछी से घुमा-घुमाकर आकार दिया जाता है। गोल आकृति सावधानी से बना**यी** जा**ती** है। महिलाएँ इतनी सिद्धस्त होती हैं कि बात करते हुए या गीत गाती हुई भी गोलाकार में कहीं कमी नहीं आने देती हैं। समस्त कलात्मक स्वरुप। सर्वत्र समानुपातिक। अब लकड़ी के बने मुहर से केक से सतह के मध्य भाग में मुहर लगा दिया जाता है। यह एक प्रकार का स्थानीय ब्रांडिंग है। मुहर लग जाने से नमक किस ग्राम में और किस परिवार में बना है इस बात को सहजता से समझा जा सकता है। तैयार होने के बाद उसे केले के पत्ते में लपेटकर खुली हवा में छोड़ दिया जाता है। केले के पत्ते से भी नमक

रस चूसता है और अपने स्वाद में मधुरता लाता है। एक दिन के बाद उसे टोकरी में सजाकर रख दिया जाता है। सामान्यतया 100 केक की एक टोकरी हो**ती** है। परम्परा के अनुसार, साल के प्रारम्भ में जब प्रथम बार नमक का निर्माण होता है तो एक उत्सव का आयोजन राजमहल में किया जाता है। सभी लोग नमक लेकर जाते हैं। पहला नमक देवता को चढ़ाया जाता है, फिर राजा को। उस दिन राजा यह भी घोषणा कर देता है कि अब इस नमक को दैनिक जीवन में भोज्य पदार्थों में डालकर खाया जा सकता है।

यह नमक **भैषज्य** होने के साथ ही साथ पूर्ण शाकाहारी भी है। कितने दिन भी क्यों न रख लें, यह खराब नहीं होता है। इसमें किसी तरह का कीड़ा या फंगस नहीं लगता है। यह सदैव शुद्ध रहता है।

7

नागा मोरुंग: यूथ डारमेट्री

— भाग 1 —

नागाओं की बात कर रहे हैं। उनकी संस्कृति को उनके आईने से समझने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनके जीवन के अनेक आयाम हैं जिस पर गौर करने की आवश्यकता है। ये स्वर्गिक हंसी बिखेरने वाले नागा युवक और युवतियां गतिशील लोग हैं। इनके जोश, उमंग और गति को जिसमें संस्कृति संरक्षण का ज़ज्बा इंच-इंच में **व्याप्त** है, आप हर क़दम पर अनुभव कर सकते हैं। शर्त एक है, आप इनके पास इनको समझने के लिए एक विद्यार्थी बनकर जाइए। ज्ञानी और सिखाने वाले बनकर जायेंगे तो फिर आपका अनुभव व्यर्थ चला जायेगा। लगता है मैंने आज तक इनसे जो कुछ भी सीखा उसको जस का तस कह दूं! कहने में भी तारतम्य स्थापित करना पड़ता है। अनेक कड़ियों को जोड़ना पड़ता है। विषय और वस्तु के हिसाब से कड़ियों को आगे-पीछे स्थापित करना पड़ता है। चंचल मन को शांत करना पड़ता है। यह भी आवश्यक है कि एक-एक बात स्पष्ट **होती चली** जाए। जो भी हो अनुभव तो बाटूंगा ही। देखिये क्या और कहाँ तक चल पाता हूँ। चलिये, उनके युवा गृह या यूथ डारमेट्री का जिक्र करने का प्रयास करता हूँ। सभी नागा के युवा गृह होते हैं। सबकी अपनी विशेषता है। मैं नागा युवा गृहों का

जिक्र करते हुए नागा के युवा गृह पर विस्तार से चर्चा करने जा रहा हूँ। यह चर्चा मैं दो चरणों में करूंगा ।

नागा शब्द की उत्पत्ति के बारे में कई मत प्रचलित हैं। कुछ लोगों का मानना है कि नागा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के शब्द 'नग्न' से हुई है। एक अन्य मत यह है कि नागा शब्द की उत्पत्ति 'नाग' से हुई है जिसका अर्थ है साँप या साँपों का राजा। पौराणिक रूप से, राजकुमारी उलुपी एक नागकन्या थी जो सांपों के राजा की बेटी थी। उलुपी का निवास आमतौर पर नागालैंड के दक्षिण-पश्चिम में माना जाता है। चूंकि यह क्षेत्र नागराज के अधीन था, इसलिए लोगों को नागा के नाम से जाना जाता है।

नागालैंड उत्तर-पूर्व का सुदूर राज्य है, इसको आप अंतिम राज्य कह सकते हैं। यह प्रदेश उत्तर दिशा में अरुणाचल प्रदेश, दक्षिण में मणिपुर, पूर्व में म्यांमार और पश्चिम में असम से घिरा हुआ है। सुंदर **पहाड़ियाँ** और घाटियाँ इसे दुल्हन की तरह सौन्दर्यमयी बनाती हैं। पशु, पक्षी, जीव-जंतु, पेड़-पौधों के साथ यहाँ के आदिवासी अपनी जीवन और संस्कृति का लय-ताल उत्पन्न करते हैं। नागाओं के बीस चिन्हित समुदाय और एक कछारी (कूकी समूह) समदाय के आदिवासी अथवा जनजाति या मूल निवासी कह दीजिये, यहाँ रहते हैं। कछारी को नार्थ कछार हिल्स (दीमा हसाओ) ज़िले एवं असम के अन्य स्थान पर 'दीमासा' के नाम से जाना जाता है। दीमासा कभी उत्तर-पूर्व के बहुत बड़े भू-भाग पर राज्य करते थे। उनका व्यापक इतिहास, शौर्य गाथा, फोकलोर है। उनके राजा, रानी और शूरमाओं की कथा और गाथा सुनेगें, तो आप रोमान्चित हुए बिना नहीं रह सकते। दीमापुर, जो नागालैंड के

प्रवेशद्वार पर अवस्थित एक शहर है और जहाँ नागालैंड का हवाई अड्डा भी है, मूलरूप से दीमासा आदिवासी लोगों के प्रभुत्व वाला स्थान था। आज भी दीमासा आदिवासी के प्रभुत्व का ऐतिहासिक प्रमाण यहाँ व्याप्त हैं।

इतना तो स्पष्ट हो गया है कि नागा असम के लोगों का द्वारा सर्वप्रथम व्यवहारित एक मूल या जेनेरिक शब्द है, जिसके संबोधन से 30 से भी अधिक नागा समूह की जनजातियों का बोध होता है। यद्यपि उनमें से प्रत्येक जनजाति अलग भाषा, संस्कृति, संस्कार, खान-पान, वस्त्र-विन्यास, प्रसाधन, श्रृंगार, गृह निर्माण कला **आदि** लिए जाने जाते हैं।

अगर नागालैंड तक ही अपने आप को सीमित करूँ तो यहाँ 20 नागा और एक दीमासा कछारी रहते हैं। ये 20 नागा समूह निम्नलिखित हैं:

1. अंगामी (Angami)
2. आओ नागा (Ao Naga)
3. छांग नागा (Chang Naga)
4. चीर्र नागा (Chirr Naga)
5. खिंआमनुनगम नागा (Khiamnungam Naga)
6. कोन्यक नागा (Konyak Naga)
7. लिआंगमई नागा (Liangmai Naga)
8. लोथा नागा (Lotha Naga)
9. मकुरी नागा (Makury Naga)
10. म्ज़ीएमे नागा (Mzieme Naga)
11. पोचुरी नागा (Pochury Naga)

12. फोम नागा (Phom Naga)
13. पौमई नागा (Poumai Naga)
14. रेन्गमा नागा (Rengma Naga)
15. रोंगमेई नागा (Rongmei Naga)
16. सांग्तम नागा (Sangtam Naga)
17. सूमी नागा अथवा सेमा नागा (Sumi Naga or Sema Naga)
18. टीखिर नागा (Tikhir Naga)
19. यिमचुनगर नागा (Yimchunger Naga)
20. ज़ेलियांग नागा (Zeliang Naga)

चूँकि हरेक नागा समुदाय की अपनी स्वतंत्र भाषा है, अतः एक-दूसरे समुदाय से वार्तालाप करने के लिए इन्होंने एक लिंक या सूत्र भाषा का निर्माण किया है, जिसे 'नागामीज' कहते हैं। जैसा कि नामकरण से स्पष्ट है नागामीज असमिया या असमीज और नागा समूह की शब्दावलियों के मेल से निर्मित भाषा है। इससे भी इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि नागा अनेक समूह वाले लोग होते हैं। सबकी बोली-वाणी, वस्त्र-विन्यास और खान-पान अलग हैं। इनके शरीर का गठन भिन्न-भिन्न हैं। भोजन का प्रतिमान अलग है। फिर भी इनको एक कह सकते हैं, क्योंकि ये एक भू-भाग, पारिस्थितिकी आदि साझा करते हैं। ये अपने आपको एक सूत्र में जोड़कर देखते हैं। आजकल ये आपस में वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित करने लगे हैं। नागाओं की एक समानता यह है कि ये सभी मोंगोलोइड प्रजातीय समूह के हैं फिर भी भिन्नता स्पष्ट है। इनमें कोई बड़े तो कोई छोटे आकार और कुछ मध्यम कद-काठी के भी हैं।

कुछ समूह के नागा के चमड़े लाल हैं तो कुछ के **हल्के** पीले हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो दूधिया रंग के हैं। कुछ के रंग तनिक दबे हुए भी हैं।

अगर सांस्कृतिक समानता की बात करें, तो सभी नागाओं में विवाह से पूर्व कुंवारे लड़के और लड़कियों के लिए एक अलग सामुदायिक घर बनाने की परम्परा रही है। ये घर लड़के और लड़कियों के लिए अलग-अलग होते हैं। लड़कों का लड़कियों के सामुदायिक घर में जाना और लड़कियों का लड़कों के सामुदायिक घर में प्रवेश वर्जित है। इन सामुदायिक घरों में उनका रहना एक प्रकार से उनके वैवाहिक जीवन से पूर्व के प्रशिक्षण केंद्र में रहने के समान है, जहाँ पर उन्हें घर निर्माण की कला, कृषि उपकरण का संचालन, रस्सी बनाने की कला, जंगली जानवरों का शिकार करने और उनसे बचने के तरीके, जड़ी-बूटियों की पहचान, गीत, नृत्य, खेल, वस्त्र बुनने का प्रारम्भिक ज्ञान, भोजन निर्माण की प्रक्रिया, प्रकृति के साथ जीवन का संतुलन, लिंग और आयु के हिसाब से श्रम का वर्गीकरण, राजनैतिक और सामाजिक जीवन संचालन के तौर-तरीकों का गहन प्रशिक्षण दिया जाता है यहाँ उन्हें यह भी सिखाया जाता है कि मृतक का संस्कार कैसे करना है। संस्कार के बाद उनका क्रिया-कर्म का संचालन किस तरह से करना है और न जाने जीवन के और कितने गुण हैं जिन्हें वैवाहिक जीवन में आने से पूर्व ही लड़के और लड़कियों को समझा दिया जाता है।

नागा जनजातियों के साथ मिलना-जुलना एक बाहरी मनुष्य को रचनाशीलता, रोमांच और उत्साह के अलग संसार में ले जाता है। आप अचानक प्रकृति और संस्कृति के साहचर्य के सौन्दर्य और तालमेल में रमने लगते हैं। आपको लगने लगता है कि जीना इसी

का नाम है। जीवन का रस तो नागा स्त्री और पुरुष ही ले रहे हैं। नागाओं का लकड़ी पर कार्य करना आपको भाने लगता है। सौन्दर्यप्रेमी नागा लड़कियां और लड़के अपने शरीर को मानो कैनवास में बदल देते हों। उनको मालूम है कि किस तरह से अलग-अलग तरह के केश विन्यास, गोदने आदि से वे अपने सौन्दर्य को निखार सकते हैं। जब कोई लड़का किसी लड़की के सौन्दर्य की प्रशंसा कर दे तो लड़की खिल उठती है। जब एक प्रेमिका अथवा पत्नी अथवा नायिका किसी पुरुष के देह और देह विन्यास को देखकर मुस्कुरा भर दे तो लड़का सातवें आसमान पर चला जाता है। ये सब अतिरेक नहीं है, नागा जीवन की सच्चाई है। एक बार वहाँ रहकर और उनके साथ जीवन को बिताकर तो देखिये! सौन्दर्य में मत्त प्रकृति को प्रेम करने वाले नागा महिला और पुरुष बेजोड़ गायक और नर्तक होते हैं। जहाँ महिलाओं की मुद्रा और पैर के संचालन में श्रृंगार मिलेगा, वहीं पर पुरुषों के नृत्य में उछल-कूद, वीर रस का संचालन, शौर्यगाथा और पराक्रम का भान होगा। पुरुषों के गीत में आपको ललकार मिलेगा, अपनी परम्परा, अपने लोग, अपने पूर्वज, अपनी प्रकृति, अपने पराक्रम से प्यार मिलेगा। गीत और नृत्य करते भी आपको नागा शूरवीर ही लगेंगे। वे बहुत ही खूबसूरत किंतु लघु कुटीर का निर्माण फूस, घास, बाँस, लकड़ी, बेंत आदि के माध्यम से करते हैं। फिर उसको जानवरों की हड्डी, खोपड़ी, चमड़े, पक्षियों के फर, बेहतरीन काष्ठशिल्प और प्राकृतिक घास, फूल और पत्तियों आदि से सजाते हैं। इन पर्ण-कुटीर को देखकर अगर आप बेचैन हो गए तो मुझे दोषी न मानें! उनके घर

अत्यधिक संतुलित और साफ-सुथरे होते हैं। गंदगी कहीं से भी आप देख ही नहीं सकते। वे अदभुत ग्रामीण या देशी आर्किटेक्ट होते हैं।

यहाँ के जंगल, बाँस और बेंत से भरपूर हैं। जिसके प्रयोग से वे विशेष और कलात्मक टोकरी का निर्माण करते हैं। टोकरी बनाने की कला केवल नागा पुरुषों तक ही सीमित है। इसका सम्बन्ध भी श्रम के विभाजन से है। सभी नागा पुरुष विभाजित बाँस की चटाई बुनना जानते हैं, जो घरों की दीवारों और फर्शों के निर्माण के लिए लकड़ी के अलावा मुख्य सामग्री है। धान सुखाने के लिए बारीक बुनी हुई चटाइयां तैयार करना बहुत महत्वपूर्ण कलात्मक कार्य है।

नागा और बाँस एक-दूसरे के पूरक हैं। एक कहावत है: "नागा बाँस के पालने में जीवन शुरू करते हैं और बाँस के ताबूत में उनका जीवन समाप्त हो जाता है।" स्प्लिट बाँस से चटाई और टोकरियां बनाते हैं। टोकरियाँ और अन्य बेंत के सामान बनाने की तैयारी के विभिन्न चरण होते हैं। यह जंगल से कच्चे माल के संग्रह से शुरू होता है, आवश्यक आकार के टुकड़े बनाने, टोकरी की बुनाई और अंत में परिष्कृत स्पर्श देने से खत्म होता है। इसके अलावा, वे बच्चों के लिए अलग-अलग तरह की कुर्सी, सोफा, टेबल और पालने तैयार करते हैं। टोकरियों के अलावा, नागा बाँस से चटाई, ढाल और विभिन्न प्रकार की टोपियाँ बनाते हैं। अति आकर्षक चुंग या पीने के प्याले बनाते हैं; पोकर वर्क के साथ बाँस से बने मग भी बनते हैं। कभी-कभी चित्रित शैली के पुष्प पैटर्न या फुरसत में उकेरे गए मानव आकृतियों के साथ डिजाइन तैयार किए जाते हैं। बाँस के पाइप और लकड़ी के बेल्ट भी लोकप्रिय हो रहे हैं।

बेंत प्रचुर मात्रा में होने के कारण शिल्प में बड़े पैमाने पर इसका उपयोग किया जाता है। मोटे और बड़ी टोकरियों के लिए बेंत का उपयोग किया जाता है। कटोरे, मग और अन्य चीजें सभी जनजातियों द्वारा बनाए जाते हैं। बेंत के हेलमेट और टोपी के फ्रेम कई प्रकार के होते हैं। नागाओं में बेंत से वर्षारोधी टोपी भी बनाई जाती है। कुछ जनजातियों के पुरुष लाल रंग की बेंत की महीन पट्टियों और पीले ऑर्किड के तनों को कौड़ियों के साथ मिलाकर बहुत ही आकर्षक गले की पट्टियां, बाजूबंद और लेगिंग बुनते हैं। महीन बुनावट वाली बेंत के धागों से बुनी गई चटाइयाँ सजावटी महत्व की होती हैं। बेंत का फर्नीचर भी काफी लोकप्रिय है। बेंत से हार और बाजूबंद भी बनाए जाते हैं। बेंत के आभूषण जैसे हेड बैंड, चूड़ियाँ, लेग-गार्ड आदि कारीगरी के अन्य मॉडल हैं।

नागा समाज समतावादी है और सदस्यों के बीच कोई आर्थिक भेदभाव मौजूद नहीं है। आर्थिक जीवन का एक सांप्रदायिक आधार है। गांव और अंतर-गांव स्तर पर यूथ डारमेट्री और आदिवासी परिषद् महत्वपूर्ण संस्थान हैं और नेतृत्व बहुरूपी है। प्रथागत कानून या कस्टमरी कानून सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को नियंत्रित करते हैं। सामाजिक एकीकरण का एक बहुत ही उच्च स्तर मौजूद है। कोई व्यावसायिक विविधीकरण नहीं; पूंजी निर्माण की कोई प्रवृत्ति नहीं है और अनुचित साधनों से धन अर्जन की कोई प्रवृत्ति नहीं है।

युवा डॉरमेट्री में स्थानीय वास्तुकला में अभूतपूर्व होता है। युवा नागा में सौंदर्य संबंधी संवेदनशीलता बहुत ज्यादा होती है। शादी से पहले पारंपरिक रूप से नागा लड़के और लड़कियां, लड़कों और

लड़कियों के लिए अलग-अलग बनाए गए युवा-गृहों में काफी मूल्यवान समय बिताते हैं और जीवन में व्यावहारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और सुरक्षा प्रशिक्षण सीखते हैं।

मोरुंग: युवा डारमेट्री

परम्परागत नागा घर एक मंजिला संरचना है, जिसमें फर्श के रूप में उपयोग की जाने वाली समतल मिट्टी होती है। इसकी लंबाई 10-20 मीटर और चौड़ाई 6-8 मीटर होती है। पर्ण-कुटीर की छत में उपयोग की जाने वाली सामग्री गाँव में व्यक्तिगत स्थिति से निर्धारित होती है और ऐसी चार डिग्री हैं। पहली डिग्री के कुटीर में छप्पर वाली घास, दूसरी डिग्री की कुटीर में बजरा-बोर्ड और कीका (जो कई बार आकार और झोपड़ी पर स्थान में भिन्न होती है) के साथ छत की जा सकती है। प्रत्येक नागा कुटीर के आंतरिक भाग में तीन कम्पार्टमेंट होते हैं। सामने का कमरा (किलोह) घर की लंबाई का आधा है। यहाँ एक या दोनों दीवारों के साथ टोकरियों में धान जमा किया जाता है और कमरे में चावल निकालने करने के लिए एक बेंच (पाइकह) से सुसज्जित किया जाता है।

दूसरा कम्पार्टमेंट मिपु-बु (mipu-bu) एक तख़्त विभाजन द्वारा अलग किया जाता है, जिसमें एक द्वार होता है। यहाँ चूल्हा होता है (खाना पकाने के कंटेनरों के लिए एक स्टैंड बनाने के लिए जमीन में एम्बेडेड तीन पत्थरों से मिलकर)। यहाँ बिस्तर होते हैं। यह कमरा शयनकक्ष के रूप में भी व्यवहारित होता है। तीसरा कम्पार्टमेंट, एक मीटर या उससे अधिक गहराई में और घर की पूरी चौड़ाई को विस्तारित करने वाला, किनुत्से है, जहां देशी मदिरा का टब स्थित

होता है। इस कमरे में घर का पिछला प्रवेश द्वार भी होता है। युवा गृह या मोरुंग में आमतौर पर पांच से अधिक व्यक्ति नहीं रहते हैं। लगभग हर गाँव में एक खुला स्थान होता है जो गाँव के सभी निवासियों के लिए एक मिलन स्थल और औपचारिक स्थान के रूप में कार्य करता है। इस क्षेत्र में पत्थर की चिनाई या लकड़ी से बने बैठने के लिए बैठक भी हो सकते हैं। इन बैठकों पर(जो अक्सर गांव की दीवारों या गांव में अन्य ऊंचे बिंदुओं पर चढ़ते थे और नौ मीटर तक ऊंचे हो सकते थे) मूल रूप से उन चौकीदारों के लिए पोस्ट के रूप में उपयोग किए जा सकते थे जिनका उद्देश्य आसन्न दुश्मन हमले की चेतावनी देना था।

— भाग 2 —

यह स्पष्ट कर देना अनिवार्य है कि अविवाहित युवाओं के लिए युवा गृह का प्रावधान अनेक जनजातियों में व्याप्त रहा है। नागा कोई इसका अकेला प्रमाण नहीं है। हां, जिस तरह से एक मोरूंग को नागा सजाता है, उसका सांस्थानिक व्यवस्थापन करता है, वह अपने आप में अकेला प्रमाण अवश्य है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि नागाओं का संसार अद्भुत है। आप इसके भीतर जैसे-जैसे प्रवेश करते जायेंगे, वैसे-वैसे इनकी संस्कृति और स्वाभाव के दीवाने होते जायेंगे। ऐसा है चार्म इनका। नागा इतिहास और भाव का फोकलोर के बृहत् एथनोग्राफिक अध्ययन और उनके ऐतिहासिक एथनोलोजिकल एनालिसिस से उतना अभी तक नहीं किया गया, जितना होना था। अभी भी इस

कार्य को गम्भीरता से किया जा सकता है। नागाओं ने अपनी परम्पराओं को लिखकर नहीं रखा है। जो बाहर के लोग थे: मिशनरी या अन्य संस्थाएं थी, उनका मिशन और एम्बिशन कुछ और था। इनके मेन्टल मैपिंग पर काम होना बाकी है। गहन वैज्ञानिक और गंभीर कार्य तुरत होना चाहिए। ये मौखिक परम्परा के लोग हैं।

वैसे कबुई नागा के साथ काम कर रहा था तो उनके यहाँ एक अजूबा सन्दर्भ मिला – लोककथा में भाषा और लिपि पर। उसके अनुसार कबुई नागा के पास कभी लिपि भी थी। उनकी लिपि को उनके प्रमुख देवता ने एक जानवर के चमड़े पर लिखकर दिया था। जिस घर में वह लिपि पड़ा था उसका मुखिया एक दिन बहुत भूखा था। चूल्हे के आग की तपिश से वह लिपि वाला चमड़ा उसे सोंधा लगने लगा। घर का मुखिया अपना लोभ नहीं बर्दाश्त कर सका और धीरे-धीरे उस चमड़े को खाने लगा। वह चमड़ा उसको बहुत स्वादिष्ट लगा और कुछ दिनों में वह पूरा चमड़ा खा गया। अब जब प्रमुख देवता को पता चला कि मुखिया लिपि वाला चमड़ा खा गया है, तो वह क्रोधाग्नि में जलने लगा। उसने इस कुकृत्य के बदले सभी कबुई नागा को शाप देते हुआ कहा: "तुम लोगों ने लिपि के चमड़े का भक्षण कर लिया है। इसकी सजा यह है कि अब से तुम लोग बिना लिपि के रहोगे।" यह लघु दंतकथा नागा जीवन के एक बहुत बड़े पक्ष पर प्रकाश डाल रहा है। अनेक कथाओं पर कार्य करने की जरूरत है। चलिए, इस पर फिर कभी चर्चा कर लेंगे, अभी युवा गृह को समझते हैं।

परंपरागत आओ नागा युवा गृह

सभी नागा समुदायों में अविवाहित लड़कों और लड़कियों के लिए युवा गृह या मोरुंग की सदियों पुरानी परंपरा है। पुरुष व स्त्रियों के लिए अलग-अलग डारमेट्री बनाए गए हैं। प्रत्येक डारमेट्री एक विशिष्ट शैली में अद्वितीय और संरचित है। इन डारमेट्री की संरचना और कार्य में नागा नर और मादा का रचनात्मक दिमाग खूबसूरती से परिलक्षित होता है। नागा पुरुष और स्त्री शयनगृह को क्रमशः 'अरिजू' और 'त्सुकी' कहा जाता है।

अरिजू: अविवाहित पुरुषों का मोरुंग

मोरंग की सदस्यता सभी लड़कों को उनकी स्थिति के अनुसार स्वतः मिल जाती हैं, क्योंकि वे 12 से 13 साल की उम्र में इसमें प्रवेश की पात्रता स्वतः ग्रहण कर लेते हैं। इस व्यवस्था को अरिजू और उसमें रहने वाले को जुंगा कहा जाता है। सबसे पुराना ज़ुंगा हर तीन साल में लगभग 25 वर्षों में सेवानिवृत्त होता है। आम तौर पर, अरिजू में निम्नलिखित छह आयु समूह ज़ुंगा होते हैं, अर्थात्: सुंगपुर, तेनापांग, ज़ुत्सुंग, सालंग, सेनीम और जोजेन। प्रत्येक समूह की एक अच्छी तरह से परिभाषित स्थिति होती है और वे उसी के अनुसार अपनी भूमिका निभाते हैं। ज्यादातर मामलों में, प्रत्येक आयु वर्ग एक दो स्तरीय प्रणाली रखता है – एक ही संवर्ग के भीतर उच्च और निम्न ग्रेड भी संभव है।

'सुंगपुर' का अर्थ है, 'लकड़ी का वाहक या सेवा देने वाला' और 'त्ज़ुइर' शब्द का अर्थ 'पानी डालना' है। यह सबसे जूनियर आयु वर्ग है, जो हर तीन साल में अपग्रेड करता रहता है, जब तक कि वे

जोजन नहीं बन जाते, जहां से वे सेवानिवृत्त होते हैं। चूँकि वे सेवा प्रशिक्षण के अधीन हैं, पहले तीन वर्ष सीनियर की शारीरिक सेवा में व्यतीत होते हैं। उन्हें वरिष्ठों द्वारा उन्हें सौंपे गए सभी प्रकार के कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। यह जीवन की वास्तविक परीक्षा का समय है, और वे इसे वास्तविक मर्दानगी तक पहुंचने के लिए जीवन में एक चुनौती के रूप में लेना ही पड़ता है।

'तेनापांग' अरिजू की दूसरी अवस्था है। तेनापांग से तात्पर्य उन खिलते हुए नागा युवाओं से है, जो शादी के लिए तैयार हैं। इस उम्र में ज्यादातर सदस्य शादी कर लेते हैं। जैसे ही नया बैच प्रवेश करता है, सुंगपुर को तेनापांग में पदोन्नत किया जाता है। उनका मुख्य काम अरिजू में युवा वर्ग को प्रशिक्षित करना, उन्हें युद्ध की रणनीति सहित जीवन के हर पहलू में अनुशासित करना है।

तेनापांग में तीन साल की अवधि के बाद, उन्हें जुत्सुंग में अपग्रेड किया जाता है। यहां वे वरिष्ठों का दर्जा प्राप्त करते हैं। तीन साल तक जुत्सुंग ज़ुंगा में सेवा देने के बाद, उन्हें इस ज़ुंगा में अपग्रेड किया जाता है। इस प्रकार, वे अपनी स्थिति और लंबे अनुभव के आधार पर वरिष्ठ वर्ग बन जाते हैं। विभिन्न विशिष्ट ट्रेडों में कनिष्ठों को प्रशिक्षित करना उनकी जिम्मेदारी होती है।

सालंग के बाद सेनीम पांचवां सबसे वरिष्ठ ज़ुंगा है। दावतों और समारोहों के लिए सेनीम जानवरों की पहचान और खरीददारी का काम करते हैं। उनकी जानकारी के बिना कुछ भी नहीं खरीदा जाता है, खासकर पशुधन। जोजेन अरिजू प्रणाली में आयु वर्ग की अंतिम श्रेणी है। उन्हें अरिजू और उसके सदस्यों के कमांडरों के रूप में

माना जाता है, जो सबसे परिपक्व आयु वर्ग है। इस उम्र से अरिजू इस जुंगा जीवन से सेवानिवृत्त हो जाता है।

अरिजू पुरुषों का मुख्य उद्देश्य प्रशिक्षित योद्धाओं के रूप में अपने गांव की रक्षा करना है। अरिजू की धारणा 'पब्लिक स्कूल' की तरह काम करती है। यह एक ऐसा पब्लिक स्कूल है, जो दिन के समय बहुत सक्रिय और व्यस्त पाया जाता है और रात के समय यह सुनसान स्थान बन जाता है। अरिजू का जीवन और गतिविधियाँ इसके ठीक विपरीत हैं, क्योंकि अरिजू पुरुष दिन के समय अपने-अपने क्षेत्रों में जाते थे। जब बाकी सदस्य काम पर जाते हैं तो मुश्किल से दो या तीन सदस्य अरिजू की रखवाली करते हैं। संस्था कई निर्देश प्रदान करती है, जो नागा के जीवन के संपूर्ण पहलुओं को समेट लेते हैं। अरिजू में प्रशिक्षित किये जाने वाले अनेक तकनीकी और गैर-तकनीकी विषय शामिल हैं।

गृह निर्माण नागाओं का विशिष्ट कौशल है। वे मास्टर आर्किटेक्ट और प्रमाणित सौन्दर्यशास्त्री हैं। अरिजू में उन्हें डिजाइनिंग, घरों का निर्माण, अरिजू, गांव के गेट और बाड़ लगाना, लकड़ी और बाँस के काम, चिनाई और धातु के काम, लकड़ी, पत्थर और मिट्टी के बर्तनों की पेंटिंग और नक्काशी आदि सिखाया जाता है। यह मास्टर शिल्प कौशल का एक वास्तविक प्रशिक्षण केंद्र है। लकड़ी की देखभाल हर नागा जनजाति के लिए एक विशेष विषय है। अरिजू के लड़के काष्ठ कला यानि लकड़ी पर नक्काशी का काम सीखते हैं। उनमें से प्रत्येक इसे खूबसूरती से कर सकता है। वे ठोस लकड़ी के बड़ों टुकड़े या लॉग को किसी भी प्रकार की वस्तु में बदल सकते हैं जैसे बाघ, हॉर्नबिल, मिथुन का सिर, सांप, छिपकली,

मानव खोपड़ी आदि। वे प्रतिभाशाली और असाधारण लकड़ी के नक्काशीकर्ता हैं। यह अरिजू को आधुनिक संदर्भ में लड़कों के लिए लगभग पॉलिटेक्निक-सह-सैन्य प्रशिक्षण स्कूल के संस्थान जैसा बनाता है। वे सर्दियों के महीनों के दौरान गर्मी और शरद ऋतु के दौरान पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल इकट्ठा करते हैं। धीरे-धीरे, सभी अरिजू पुरुष हर विषय में विशेषज्ञ बन जाते हैं। वे अपने घरों को जंगलों और जंगल के आवासीय तत्वों से बनी सुंदर वस्तुओं से सजाने के लिए जाने जाते हैं। इस संस्था में लड़के खुद को विभिन्न हस्तशिल्प तकनीकों को बनाने की कला में विशेषज्ञता प्राप्त करते हैं जिसमें बाँस और बेंत के काम, लकड़ी और पत्थर के काम, उपकरण आदि शामिल हैं। अधिकांश दैनिक उपयोग की वस्तुएं जैसे टोकरी, मग, चम्मच, व्यंजन, लकड़ी या अरिजू में ज्यादातर शाम के समय बाँस के कटोरे, पिंजरे, चाकू, दाव, भाला, ढाल, खुरपी, धूम्रपान पाइप, बुनाई के यंत्र आदि का निर्माण किया जाता है। मास्टर कलाकार और वरिष्ठ सदस्य आमतौर पर इन विषयों पर सिद्धांत और व्यावहारिक दोनों ही ज्ञान का प्रशिक्षण देते हैं।

त्सुकी: महिला मोरंग

त्सुकी अविवाहित नागा लड़कियों की जरूरतों को पूरा करती है। यह एक पूर्ण नारीवादी सामाजिक-सांस्कृतिक संस्था है। त्सुकी में अविवाहित लड़कियां एक अनुभवी विधवा या आम तौर पर एक ही कबीले की अविवाहित महिला की देखरेख में सोती हैं। एक सामान्य अभ्यास के रूप में केवल एक ही कबीले की लड़कियां किसी दिए गए त्सुकी में सो सकती हैं, क्योंकि वे कबीले बहिर्विवाह का

अभ्यास करती हैं। त्सुकी के सदस्यों को 'त्सुकिर' कहा जाता है। त्सुकिर का शाब्दिक अर्थ है 'सुंदर फूलों के एक छोटे से बगीचे का सदस्य'। आओ नागा बोली में त्सुकी का अर्थ है 'बाग'। इसलिए, जब कोई त्सुकी के बारे में बात करता है, तो यह उस 'युवा लड़कियों के बगीचे' को संदर्भित करता है, जहां एक योग्य मैट्रॉन के तहत उन युवा लड़कियों का समाजीकरण होता है। आओ नागा परंपरा में, फूल 'युवा लड़कियों' को दर्शाता है। त्सुकी एक छोटा-सा संस्थान है, जहां पांच से दस लड़कियों को रखा जा सकता है।

त्सुकी के कार्य

- त्सुकी के सदस्यों को एक सम्पूर्ण और समझदार महिला के रूप में प्रशिक्षित करने के लिए;
- परिवार के मानदंडों, सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों और समाज में उचित स्थान के संबंध में एक महिला की गरिमा को बनाए रखने के लिए उन्हें सख्ती से अनुशासित करना;
- सदस्यों को श्रम और श्रम के साथ कलात्मक की गरिमा जैसे बुनाई और खेती के तरीकों के बारे में प्रशिक्षित करना;
- भागीदारों के बीच प्रेमालाप, एक दुसरे के प्रति आकर्षण की प्रक्रिया शुरू करना और माता-पिता के बीच की खाई को पाटना;
- अक्सर अविवाहित लड़कों और लड़कियों के लिए विशेष रूप से शाम के समय मिलन-स्थल के रूप में कार्य करते हैं। यह त्सुकि और अरिजू के सदस्यों के लिए खुशी का क्षण है, जहां वे खेतों और पहाड़ों में दिन भर के थकाऊ काम के बाद गीतों के माध्यम से अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। इस प्रकार

एक महिला की वयस्कता को आकार देने की दिशा में एक त्सुकी के कार्य कई गुना बढ़ जाते हैं।

त्सुकी की सक्रियताएं असंख्य हैं। वे ज्यादातर विवाह, घरेलू, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और आर्थिक आदि से संबंधित गतिविधियों में समय बिताते हैं। शाम को यहां हर तरह की प्रतियोगिता होती है। एक लड़की को तब परिपक्व माना जाता है, जब वह लंबे बाल उगाना शुरू करती है, छाती पर एक आवरण पहनती हैं जिसे जेनको अजेन (ब्रेसियर या ब्रा) कहा जाता है और अपनी ठुड्डी, छाती और कलाई पर गुदना गुदवाना या बनवाना शुरू कर देती है।

परिपक्वता प्राप्त करने के बाद, माँ अपनी बेटी को अपने घर में सोने की अनुमति देने के लिए एक विधवा मित्र, सुकिबुत्सुला से अनुमति का अनुरोध करती है। इस प्रथा का पालन करना पड़ता है क्योंकि माता-पिता की ओर से यह शर्मनाक माना जाता है यदि वे अपनी परिपक्व बेटी को उसके यौवन प्राप्त करने के बाद शाम को घर पर रखना जारी रखते हैं। एक बार जब यह अनुरोध स्वीकृत हो जाता है, तो लड़की के पिता एक खटिया या चौकी तैयार करते हैं और उसे सुकिबुत्सुला के घर भेज देते हैं।

इस दौरान, लड़के प्रेम गीत सुनाते हैं और लड़कियां गाने के जरिए इसका जवाब देती हैं। इस तरह की बातचीत के दौरान, उनके बीच आपसी पसंद विकसित होती है। वह ज्यादातर प्रेम गीत गाती हैं। साथ ही, लोकगीत गाए जाते हैं और लोक कथाएं सुनाई जाती हैं। इस तरह की बातचीत के दौरान, विपरीत लिंगों के बीच आपसी

पसंद विकसित होती है। अरिजू के सदस्य अक्सर त्सुकी जाते हैं, लेकिन कोई भी त्सुकी सदस्य, अरिजू की यात्रा नहीं कर सकता है।

अरिजू में जीवन केवल प्रशिक्षण और सजा का समय नहीं है। यह पूर्ण आनंद, मनोरंजन, अवकाश और आनंदमय जीवन का ठोस निर्माण स्थल भी है। इसमें रहने वाले पूरी तरह से त्योहारों और समारोहों के दौरान लगे रहते हैं, जो उनके जीवन का एक हिस्सा है। अरिजू गाने सीखने, लड़कियों के साथ प्रेम संबंध बनाने के लिए काम करता है, इसके अलावा उन्हें बाँस की बांसुरी, बालों से बने तार वाले वाद्ययंत्र, बाँस से चूड़ियां और भैंस के सींग जैसे विभिन्न प्रकार के संगीत वाद्ययंत्र बनाना सिखाया जाता है, जो त्योहारों के दौरान बजाए जाते हैं।

सदियों तक, अरिजू और त्सुकी ने आओ नागा समाज में सर्वश्रेष्ठ शिक्षण संस्थानों के रूप में कार्य किया। दुर्भाग्य से, वर्तमान समय में, अरिजू और त्सुकी दोनों की कार्य-प्रणाली वास्तविक रूप से मौजूद नहीं है।

8

बाँस, बेंत और काष्ठकला

— भाग 1 —

आदिवासी और लोक जीवन की जब भी हम बात करते हैं तो एक चीज समझ लेने की जरूरत है। लोक में यूटिलिटी और ब्यूटी अर्थात जीवन की उपयोगी वस्तु, परम्परा और व्यवहार एवं सौन्दर्य दोनों एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। लोक कलाओं का सच भी यही है। इसीलिए नागा कला, उनके बिम्ब, रंग, कैनवास और परिवेश के साथ उनके सौन्दर्य एवं प्रकृति के साथ तारतम्यता को समझने की आवश्यकता है। उनकी कला और जीवन को ऐतिहासिक और लोक सन्दर्भ में देखना होगा।

आप नागा की कलात्मक अभिव्यक्ति उनके कृषि उपकरणों, गृह निर्माण, रसोईघर में भोजन बनाने और परोसने वाले बर्तनों, आखेट के उपकरणों, औजार और अस्त्रों, संगीत के वाद्ययंत्रों, केश-विन्यास करने के लिए प्रयुक्त होने वाली कंघी, युवा गृह अथवा मोरुंग के निर्माण से संचालन, नृत्य, पितरों एवं देवी-देवताओं की अर्चना पूजा और अनुष्ठान, खेतों से अन्न घर लाने और पुनः अन्न के भण्डारण, पानी पीने के बर्तनों, घड़े, कप, बोतल, वस्त्र, आभूषण, जन्म, विवाह और मृत्यु संस्कार, कंद-मूल के संचयन, मछली

पकड़ने, भोजन, प्रेम, अतिथियों के स्वागत, प्रीति भोज, उत्सव और व्यापार और न जाने कहाँ-कहाँ देख सकते हैं।

किसी भी कला का निर्माण अकारण नहीं किया जाता है। लोककला या आदिवासी कला के निर्माण में कलाकार केवल शोपीस ही नहीं बनाता। नागा महिला और पुरुष अपने शरीर में बहुत ही कलात्मक गुदना गुदवाते हैं। उनका शरीर ही कैनवास हो जाता है। गुदना गुदवाने का भी एक निश्चित प्रयोजन होता है। इसके लिए, कहीं से न तो कोई कलाकार आता है, ना ही किसी सामग्री को बाजार जाकर ख़रीदा जाता है। हरेक नागा अपने-आप में कलाकार है। उसके गोदना बनाने में उत्साह और समर्पण होता है।

यहाँ मैं नागा जीवन में केवल बाँस, बेंत और लकड़ी कला का महत्त्व, प्रयोजन, बदलते समय में नूतन प्रयोग, बाजार, व्यापार, कला के साथ लिंग का सम्बन्ध, कला की विशेषता, कला के लिए कच्चे माल की प्राप्ति, कला सीखने के पारंपरिक ज्ञान आदि पर संक्षिप्त चर्चा करने जा रहा हूँ। आप भी हमारे साथ चलिए, आपको अच्छा लगेगा।

बाँस और बेंत कला

कहता चलूँ कि बाँस और नागा एक-दूसरे के बिना अपना अस्तित्व नहीं रखते ठीक वैसे ही जैसे मुरिया आदिवासी और बाघ दोनों एक-दूसरे के अभिन्न हिस्सा हैं। नागा के बारे में एक कहावत प्रचलित है: "नागा का जीवन बाँस से शुरू होता है और बाँस के साथ ही ख़त्म हो जाता है।" इस कहावत से आप अंदाजा लगा सकते हैं कि बाँस का उनके जीवन में क्या महत्त्व है। एथनोग्राफी की यह परंपरा है कि

अगर आप किसी बाहरी समुदाय में काम करना चाहते हैं और उनको समग्रता से जानना चाहते हैं, तो लम्बी अवधि तक उनके साथ जुड़े रहिये। उनके यहाँ आते-जाते रहिये। मैं इस मामले में अपने आपको किस्मत का धनी मानता हूँ कि मुझे न केवल नागा जनजाति अपितु उत्तर-पूर्व भारत और सिक्किम के सभी समुदायों पर लम्बी अवधि तक कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त रहा है। हालांकि, इस सबके लिए बहुत बड़ा बलिदान मुझे देना पड़ा है। उस पर भी किसी किश्त में अवश्य लिखूंगा। अभी नागा तक ही सीमित रखना श्रेयस्कर है।

जब नागालैंड और असम राज्य के नार्थ कछार हिल्स (अब दिमा हसाओ जिला) में कार्य कर रहा था, तो पता चला कि नागा अपने परिवेश में 175 से भी अधिक किस्म के बाँस रखते हैं। आप चाहें तो इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि 175 से अधिक किस्म के बाँस नागा के जीवन का वह प्राकृतिक उपहार है, जिससे उनका जीवन और संस्कृति संचालित होता है। नागा बाँस खाते भी हैं। उससे घर बनाते हैं, औजार बनाते हैं। और भी अनेक कार्य हैं, जिस पर लघु विवेचना करने का प्रयास कर रहा हूँ। बाँस को जब बेंत का साथ मिला दिया जाये, तो फिर क्या कहने, इनकी कला में क़दम-क़दम पर आप निखार देख सकते हैं।

एक बात और स्पष्ट करता चलूँ। हमारे शोधकर्मी लकीर के फ़क़ीर होते हैं। किसी ने सुविधा के लिए लिख दिया कि नागा के किसी खास समुदाय में ही बाँस, बेंत और लकड़ी कला के उन्नत उदाहरण हैं, तो वे इसको ब्रह्म वाक्य मान लेते हैं। सच यह है कि सभी नागा उपर्युक्त कलाओं में पारंगत होते हैं। हाँ कभी-कभी किसी

खास समुदाय को विशेष सुविधा मिल जाती है और वे चमक उठते हैं। शोध में तो उन पर अधिक गम्भीरता से कार्य करने की आवश्यकता है जिन पर पहले के शोधार्थी मौन रहे हैं।

नागा को जानना चाहते हैं, तो उनको उनकी कलाओं से सम्बंधित लोक कथाओं अथवा दंतकथाओं को कहने के लिए उकसाइए। आपको लगेगा कि किस खूबसूरती के साथ इन्होंने प्रकृति के अवयवों से अपने आपको जोड़ा है।

हॉर्नबिल महोत्सव के दौरान एक बुजुर्ग पुरुष आओ नागा कहने लगे: "किसी समय, मतलब हजारों साल पहले एक आओ नागा गुनिया था। वह चमत्कारी पुरुष था। उसका नाम चंग्किचंग्लान्ग्बा (Changkichanglangba) था। वह अनेक तरह का जादू और तिलिस्म जानता था। लोग उसके कलाओं और ज्ञान का रहस्य जानना चाहते थे। साधारण से दिखने वाले बाँस से अनूठी कलाएं बनाकर लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता था। वह सचमुच में कलापुरुष था। चंग्किचंग्लान्ग्बा लोगों को अक्सर कहा करता था: "सुनो! अगर मेरी कला की जादूगिरी देखना चाहते हो तो मेरी मृत्यु के छठे दिन जाकर मेरी कब्र खोदना, उसमें से बहुत सारी ज्ञान की बातें मिल जायेगी।" मृत्यु जीवन का यथार्थ है। चंग्किचंग्लान्ग्बा एक दिन मर गया। लोगों ने उसको नागा रीतियों से कब्र में दफ़न कर दिया। उसके कहे अनुसार मृत्यु के छठे दिन कुछ बुजुर्ग नागा उसके कब्र को खोदकर देखने लगे। सभी के सभी देखते ही दंग रह गए। लोगों ने देखा के बाँस के अनेक उपकरण, टोकरी एवं कलात्मक वस्तुओं के डिजाईन, बिम्ब, प्रतिमान और कुछेक नमूने बने हुए थे जिसको सभी नागा पुरुष सहजता से बना सकते थे। फिर

क्या था, सभी नागाओं ने उनको अपने जीवन में उतारना शुरू किया। चंग्किचंग्लान्ग्बा उनका आदि कलागुरु बन गया। सभी नागा उसको ही अपना आधार मानने लगे। इस तरह की अनेक दंतकथाएं अनेक नागा समुदाय में व्याप्त है, जिस पर गहन शोध कार्य करने की आवश्यकता है।

आप जब कभी नागालैंड जाएँ, नागाओं के द्वारा बाँस से निर्मित बांसुरी अवश्य देखें। उसका वैविध्य स्वरुप, कला, आकार, स्वर का वैज्ञानिक सम्बन्ध आपको मन्त्रमुग्ध कर देंगे। अलग-अलग समुदाय की अलग-अलग बांसुरी मिलेगी। इसके अलावा, एक ही नागा समुदाय के अलग-अलग गाँव में नूतन और अद्भुत प्रयोग देखकर आप दंग रह जायेंगे। इतना ही नहीं, वाद्ययंत्र अर्थात बांसुरी अधिक मनोरम लगे, जिससे उसके बजने से पूर्व ही लोगों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हो जाए, इसके लिए बेंत के छिलके से एवं अन्य वस्तुओं से इनको सजाया भी जाता है। नागा बाँस के ऑरगन और ट्रम्पेट भी कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए और सौन्दर्य प्रेमी के रूप में बनाते हैं। ये शिकारी तो उत्तम दर्जे के होते ही हैं, मछली पकड़ने की कला में भी निष्णात होते हैं। और मछली पकड़ने के अधिकांश उपकरण बाँस से ही बनते हैं। बाँस को चीरकर फिर उसका फट्टी बनाते हैं और उनसे जालीदार मछली पकड़ने के उपकरण का निर्माण होता हैं। फट्टियों के तितियों को जोड़ने के लिए प्रायः बेंत के छिलके का उपयोग रस्सी की तरह करने की परम्परा है। इससे पानी में वह धागा अर्थात बेंत का छिलका न तो गलता है ना ही धूप में सुखकर टूटता है। इतना ही नहीं, पकड़ी हुए मछली को एकत्रित करने के लिए और उसे घर तक लाने के लिए भी टोकरी बाँस का ही

बना होता है। उत्तरपूर्व के अधिकांश आदिवासी बाँस और बेंत से हैट, टोप या टोपी बनाते हैं। मैंने लोअर दिबांग वैली अर्थात अरुणाचल प्रदेश के इदु-इश्मी जनजाति का ऐसा टोप देखा है, जो उन्हें बन्दूक के बुलेट से भी बचा सकता है। नागा यद्यपि मूलतः बाँस से टोप बनाते हैं और उसको कलात्मक एवं मजबूत बनाने के लिए उसमें बेंत और बेंत के छिलकों का भी प्रयोग करते हैं। कहने की जरूरत नहीं है कि प्रत्येक नागा समूह एक टोप बनाने में भी अपने सौंदर्य और कलात्मक वैविध्य का परिचय देना नहीं भूलते। आप बाँस और बेंत से बने इनके अलग-अलग अकार और प्रकार के युद्ध-सामग्री का ढ़ेर इनके मोरुंग में आज भी देख सकते हैं। एक बार जाइए ना नागालैंड! इनके तीर, धनुष, भाला, दाओ आदि सभी कुछ में बाँस या बेंत या फिर दोनों का सम्मिश्रण होता है। वे लोग बाँस के लट्ठ का भी प्रयोग करते हैं। बाँस का मग, बोतल और उस मग और बोतल में भी भी अनेक बिम्ब उकेरे मिलेंगे आपको। आप हर काम की वस्तु में कला और संस्कृति का संचार देखेंगे। और तो और बाँस के चम्मच, कलछुल, छोलनी, ट्रे आदि सभी कुछ तो वे बनाते हैं। बनाते ही नहीं, उनका उपयोग भी करते हैं। नागा कला और बाँस एवं बेंत का अद्भुत संगम देखना चाहते हैं तो इनके द्वार बनाए गए कंघी देखें। एक नागा प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए कंघी का कैसा कलात्मक स्वरुप गढ़ता है, इसको देखकर आप विस्मय में रह जायेंगे।

सूअर, मिथुन अथवा अन्य मांस को ये बाँस के अन्दर केले के पत्ते अथवा अन्य भैषज्य पत्ते में मसाला आदि के साथ लपेटकर रख देते हैं और उन्हें चारों तरफ से बांध देते हैं। फिर उसको जलते

लकड़ी या कोयले की आग में ढंग से पकाते हैं। उधर चावल भी इसी विधि से पकाया जाता है। जब दोनों भोज्य पदार्थ पककर तैयार हो जाते हैं तो उसका जो स्वाद है, वह स्वाद आपको कहीं नहीं मिलेगा। केला का पत्ता, जंगली जड़ी-बूटी, अन्य पत्ते, देसी मसाले सभी पके चावल और मांस को अलग ही तरह का भोज्य पदार्थ बना देता है।

मैंने नागाओं को अपनी मिट्टी, कद्दू एवं अन्य बर्तन पर बेंत के छिलके से सजाते देखा है। उसे बुनकर कलात्मक बनाते देखा है। गाँव के रक्षा पोस्ट में भी बाँस की अभेद्य भूमिका है।

नागाओं एवं उत्तर-पूर्व भारत की अनेक जनजातियों पर कार्य करने के क्रम में एक जानकारी मिली कि बाँस की अत्यधिक खपत जरुरी है, अन्यथा इसके अंदर फूल आने की सम्भावना बढ़ जाती है। बाँस में फूल आने की सम्भावना अर्थात् बाँस में फूल खिलने लगते हैं? हां जी! सही सुना आपने। बाँस खिलने लगते हैं, लेकिन बाँस का खिलना अशुभ का लक्षण है यानि मुसीबत का बुलावा होता है। बाँस खिलने से चूहे अनंत संख्या में उत्पन्न हो जाते हैं और खेतों के धान का सर्वनाश कर देते हैं। लोगों के भूखे मरने का नौबत आ जाती है। हालाँकि, बहुत दिन से ऐसा नहीं हुआ है। पहले किसी निश्चित भू-भाग में इस तरह की घटना घटित होती थी।

नागा बाँस से फर्नीचर भी बनाते हैं। आज के समय में, नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ डिजाईन, नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ फैशन टेक्नोलॉजी एवं इसी प्रकार की अन्य संस्थाएं भी नागाओं को आधुनिक सामान बनाकार उसमें नागा बिम्ब, परिकल्पना, तकनीकी आदि का प्रयोग कर बाजार और व्यापार के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

— भाग 2 —

सत्य तो यह है कि नागा समाज और उनकी बाँस, बेंत और काष्ठकला पर आप जितना चाहें लिखते जाएं – हरि अनंत हरि कथा अनंता। लेकिन मूलभूत कथ्य को कहते हुए आगे की लेखन-यात्रा करनी है, इसीलिए न चाहते हुए भी यहां बाँस और बेंत कला को विश्राम दे रहा हूं। एक बात स्पष्ट करने का मन अवश्य है। नागा बाँस से जो मुखौटा बनाते हैं और उसमें सहजता से प्राप्त प्राकृतिक रंग से चमत्कार उत्पन्न करते हैं, जो कि काबिलेतारीफ़ है। उन मुखौटों को देखकर आप इतना तो अंदाज लगा ही सकते हैं कि नागा कलाकार अपने अव्यक्त अर्थात् देवता, देवी, प्रकृति, पूर्वजों से बाते करते हैं।

एक बार प्रोफ़ेसर बैद्यनाथ सरस्वती कहने लगे: "देखो कैलाश! यह आर्ट और क्राफ्ट भारत में अलग-अलग केटेगरी नहीं है। दोनों एक ही हैं। कुंभकार मिट्टी के लबादे से क्या-क्या नहीं निर्माण करता है, फिर भी उसको कलाकार न कहकर शिल्पी कह दिया जाता है। कबीरदास तो जीवन और दर्शन के सभी प्रतिमान, बिम्ब दो कलाओं: मिट्टी और बुनकारी से गढ़ते हैं। गढ़ते चले जाते हैं और लोग आज भी उनके कथ्य से अपने आपको जोड़ते हैं। निर्गुण हो या सगुण सभी कुछ मिल जाता है। ऋगवेद तो धातु, मिट्टी, लकड़ी पर कार्य करने वाले को कलाकार की श्रेणी में रखा जाता है। एक बुनकर की तुलना उस प्रजापति से किया गया है जो इस अनंत आकाश को बुनता है। रांची अर्थात झारखण्ड प्रदेश की राजधानी का नामकरण मुण्डा आदिवासियों के द्वारा व्यवहारित शब्द "अरची" शब्द से हुआ है। मुंडारी भाषा में अरची का अर्थ है, वह क्षेत्र जहाँ लौह

अयस्क का प्राकृतिक भण्डारण हो। इसीलिए रांची और आस-पास के भू-भाग में लौह अयस्क उत्खनन के अनेक कार्य किये गए। हटिया फैक्ट्री स्थापित किया गया। आर्ट और क्राफ्ट शब्द का प्रचलन अंग्रेजों के आने के बाद हुआ है। आज जरूरत इस बात की है कि हम लोग इस विभेद को ख़त्म करें।"

जब मैंने वाराणसी के बुनकर, लकड़ी के खिलौने बनाने वाले कलाकार आदि पर कार्य करना शुरू किया, तो इस बात को पूरी तरह समझ पाया। नागा पर कार्य करते-करते भी इस बात को अच्छी तरह से धीरे-धीरे आत्मसात् कर रहा था। कहने की आवश्यकता नहीं है कि जब एक नागा कलाकार मुखौटा बनाता है – चाहे वह बाँस का हो या लकड़ी का – उसमें उसकी संलग्नता सौ फीसदी होती है। क्योंकि यह कला पवित्र है, इस कला के माध्यम से देवता अथवा पितर का आह्वान किया जायेगा, इस कलाकृति में वे प्रविष्ट होंगे और प्रविष्ट होते ही लोगों से उनका कम्युनिकेशन प्रारम्भ हो जाता है। इसीलिए एक कलाकार अपने-आप में एक पंडित, ज्ञानी और भगवान का प्रतिनिधि बन जाता है। वह लोगों का प्रतिनिधि भी बनता है क्योंकि उसके माध्यम से और उसकी कृति के माध्यम से लोग भगवान से वार्तालाप कर सकते हैं। भू-देवी (अथवा देवता), ग्रामदेवता, कुलदेवता और पितरों से वार्तालाप करते हैं। अगर इन बातों को ध्यान में रख लें तो किसी भी आदिवासी कला के आप मुरीद हो जायेंगे। नागा कला भी ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत करता है।

चलिए, अब काष्ठकला पर नागा समुदाय की विशिष्टता की चर्चा करते हैं। इस कला का सर्वप्रथम दर्शन मुझे हॉर्नबिल महोत्सव में

ही हुआ था। एक फ़ोम नागा युवक जो मेरे लिए शोधकर्मी का कार्य कर रहा था, मुझे उस विशाल मैदान के उस ओर ले गया, जहाँ नागा के जीवन से सम्बंधित सभी सामग्री उपलब्ध थे। वहाँ सभी सामग्री सजाकर रखे हुए थे। आप उसे किसी संग्रहालय की वीथिका में सजे हुए वस्तु के रूप में देख सकते थे। प्रत्येक कलाकृति पर लघु किन्तु सारगर्भित जानकारी के कैप्शन लगे हुए थे। वहाँ प्रदर्शनी के साथ-साथ खरीदने का प्रावधान भी था। अगर आपको कोई कला अथवा सामग्री पसंद है, तो आप खरीद सकते हैं। मैं एक कलात्माक बेल्ट और टाई को देखकर दंग रह गया था, ये दोनों चीज मूलतः लकड़ी के बने हुए थे। उस टाई के तो क्या कहने?

मैंने प्रश्न किया: "ये बहुत कलात्मक है, इसके कलाकार से मिल सकते हैं क्या?"

नागा युवक बोला: "सर! कोशिश करता हूँ।"

कुछ ही देर में एक पैंतालिस वर्षीय नागा कलाकार के साथ वह मेरे पास आ गया। वह कलाकार पढ़ा-लिखा था। मेरे साथ अंग्रेजी में सहजता से बातें करने लगा। मैंने पूछा: "आपने यह बेल्ट या टाई क्या सोचकर बनाया है?"

कलाकार बोला: "आजकल लोग पेंट और कोट पहनते हैं। दोनों में बेल्ट और टाई की जरूरत होती है। मुझे लगा कि कला को बदलते परिवेश के साथ नये एवं आधुनिक वस्तुओं के निर्माण के लिए प्रयोग करते हैं। हमने टाई और बेल्ट बना दिया। लोगों ने इसको बहुत पसंद किया। आज नागा युवक तो ले ही रहे हैं, दूसरे लोग भी, बाहर के लोग भी इन चीजों की मांग कर रहे हैं। हमने परम्परा का त्याग नहीं किया है, यद्यपि परंपरा के साथ-साथ अनेक

नयी और प्रयोगधर्मी चीजों का भी निर्माण करने लगे हैं, जो आधुनिक समाज के अभिन्न हिस्से हैं। हम लोग अब पलंग, सोफासेट, डाइनिंग टेबल, सभी कुछ बनाने लगे हैं। पहले हम लोग गंभार एवं अन्य स्थानीय लकड़ी का प्रयोग करते थे। गंभार अभी भी हमारा पहला पसंद है, लेकिन अब कभी-कभी ग्राहकों के डिमांड पर टीक एवं अन्य लकड़ी का भी प्रयोग करने लगे हैं।

मैंने पूछा: "परंपरागत रूप से क्या-क्या और कौन-सी चीजें बनाते हैं?"

नागा कलाकार बोला: "हम लोग ईसाई हो चुके हैं। पूर्वजों की पूजा भूलने लगे हैं। लेकिन अभी भी हमारे जेहन में वे हैं। हम उनको याद करते हैं। बेशक अनुष्ठान के लिए हम सभी वस्तुओं का निर्माण कर लेते हैं। हम जानवर, पक्षी, सभी बनाते हैं। अपनी लोककथा को भी चित्रित करते हैं। लकड़ी पर लोककथाओं का पैनल तैयार करते हैं। हॉर्नबिल महोत्सव हमारे लिए खुद को खोजने का माध्यम बन चुका है। हम अपने अतीत को ढूंढने लगे हैं। खास बात यह है कि यह पुनर्जागरण किसी एक नागा समुदाय में नहीं होकर सभी नागाओं में हुआ है।"

नागा कलाकार के इस कथन से मैंने उस सत्य का अवबोधन किया, जिसमें अंग्रेजों ने इनके गाँव-के-गाँव और उनकी कलाकृतियों को जलाकर राख कर दिया। आम लोगों ने इनके सभी गुणों को दरकिनार कर, इन्हें मानव सिरों को काटने वाले नागा अथवा Naga – The Head Hunter बना दिया। आज भी एक-एक नागा गाँव जाकर उनके अवशेषों का संकलन कर नागा समुदाय के कलात्मक पक्षों की खोज करते हुए मेरा बालसुलभ खोजी मन यह

जानना चाह रहा था कि आखिर इन कलात्मक कलाकृतियों को बनाने के लिए ये कौन-कौन से औजार प्रयुक्त करते हैं! यह सोचते हुए मैंने फिर प्रश्न किया: "इन वस्तुओं को बनाने के लिए आपलोग किन-किन औजारों का प्रयोग करते हैं?"

नागा कलाकार मेरा यह प्रश्न सुनकर कुछ क्षण के लिए भीतर गया और अपने साथ तीन औजार ले आया। ये औजार थे –

- दाओ (Dao)
- हथौड़ा
- छेनी

उनको दिखाते हुए वह बोला: "सर, हमारे पूर्वज इन औजारों का प्रयोग करते थे। हम आज भी इन्हीं औजारों से सारे काम करते हैं। काष्ठ निर्माण का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है, जो हम लोग इन तीन उपकरणों से न कर पायें।"

उसके कहने के आत्मविश्वास से मैं अश्वस्त हो गया कि यह सत्य बोल रहा है। मैं सोचने लगा: "कैसे मात्र तीन लघु औजार से यह एक-से-एक वस्तुओं का निर्माण करता है?"

मैंने पूछा: "आप उन वस्तुओं का नाम बताइए, जिसका निर्माण आप लकड़ी से करते हैं?"

नागा कलाकार बोला: "सर, अभी भी बाँस, बेंत और लकड़ी की कला पुरुषों की कला है। ये कलाएं केवल और केवल पुरुष बनाते हैं। हाँ, कभी-कभी महिलाएँ इन्हें अर्थात पुरुषों को सहयोग दे देती हैं। मिथुन, हॉर्नबिल, सींग, जानवर आदि के मोटिफ्स, बेल्ट, टाई, वाल हैंगिंग, भूत-प्रेत, कल्पित देवता, राक्षस, दुष्ट, ऐतिहासिक चरित्र, मोरुंग, गाँव का द्वार, फर्नीचर, मग, टोकरी, कलछुल, चम्मच,

परंपरागत रसोई के उपकरण एवं भोजन बनाने, परोसने और खाने के बर्तन, बोतल, प्लेट, बड़ा थाल, देशी मदिरा के बर्तन, स्टूल, कुर्सी एवं अन्य अनेक चीजें बनाते हैं। नागा अपने-अपने पूर्वजों की वीरगाथा और जीवन का युद्ध-कौशल, उनके साहस, करतब आदि का मिथकीय भाव, जादू-टोना, उत्सव और भोज आदि को काष्ठ-कला में नक्काशी करते हैं। वे अपना सम्बन्ध जंगल से बताते हैं और जंगल के जीव-जंतु, पेड़-पौधे, झरने, आदि का चित्रण करना नहीं भूलते। मानव, प्रकृति और संस्कृति का सर्वोत्तम संतुलन आपको इनकी कलाकृतियों में मिलेगी। इनको अपनी संस्कृति और सभ्यता पर गर्व है। आप अगर ईमानदारी से इनके पास रहें, तो आपको इनके ऊपर और इनकी संस्कृतियों के ऊपर गर्व होने लगेगा। अगर भारत की अनेकता में एकता को समझना चाहते हैं। भारतीय जीवन और संस्कृति के वैविध्य का स्वाद चखना चाहते हैं, तो घर से बाहर निकलिये और अन्य स्थानों के साथ-साथ उत्तर-पूर्व भारत की धरती, वहाँ के लोग, उनकी संस्कृति का अवलोकन कीजिये, फिर आपको "एक भारत और श्रेष्ठ भारत" का महत्त्व पता चलेगा। कुछ दिन गुजारिये तो उत्तर-पूर्व भारत में!

भटकना नहीं चाहता हूँ मैं। विवरण देना है काष्ठकला का। उनके एक-एक अवयव का। यह इतना भी सहज नहीं है। फिर भी मोटी-मोटी जानकारी तो दी ही जा सकता है, जिससे एक बाहर का व्यक्ति नागा संसार की काष्ठ, बाँस और बेंत कला को समझ ले। उसके और भीतर प्रवेश करने के लिए उत्सुक हो जाए। यही कर रहा हूँ।

नागा कलाओं की आकृतियों में ज्यामितिक आकृतियों की भरमार है। इसके क्या कारण हैं, इसको नहीं समझ पाया हूँ। क्या

पता, कभी इस बात के तह तक किसी ज्ञानी नागा के सहारे पहुँच जाऊं! परम्परागत रूप से नागा अपने खेतों को पानी देने के लिए आयताकार स्वरुप में 8 से 10 फुट के लकड़ी को चारों तरफ से खुरचकर उसका एक कलात्मक स्वरुप देते हैं। फिर उसे पानी के समीप दो लकड़ी के पोल के बीचों-बीच, बीच में छेद बनाकर उसको स्थापित करते हैं और पैर से भीतर बल देते ही उसमे पानी भर जाता है। फिर पानी को खेत में सहजता से उड़ेलते जाते हैं।

धान से चावल निकालने के लिए भी भी आयताकार अथवा सिलिंडर के आकृति का लगभग सात से आठ फुट के लकड़ी से एक ढेकी बनाते हैं, जिससे औरतें धान से चावल निकालती हैं।

नागा को मिथुन (वहां पाया जाने वाला पहाड़ी गाय-बैल की एक प्रजाति) से बहुत लगाव होता है। किसी नागा का सामाजिक ओहदे और सम्मान को देखना है तो इसका आकलन इस बात से भी किया जाता है कि उसके पास कितना मिथुन है। नागा मिथुन पालता है। उनकी बलि देता है। देवताओं और पितरों को समर्पित करता है। मिथुन की हड्डी से नागा महिलाओं के आभूषण बनते हैं, हेयर पिन बनते हैं, कंघी बनते हैं। मिथुन के खोपड़ी और सींग से नागा अपने घर, ड्राइंग रूम, मोरुंग(अर्थात युवागृह) को सजाते हैं। मिथुन की बलि यह बताता है कि नागा कितने बलवान होते हैं। इस तरह से, मिथुन नागा के चेतन, अर्धचेतन और अचेतन तीनों ही अवस्थाओं में व्याप्त रहता है। यही कारण है कि नागा सभी कलाओं में सर्वाधिक चित्रांकन मिथुन का ही करते हैं। मिथुन के चित्रांकन में इनकी सोच, कलाकृति, इनके नूतन प्रयोग, प्रयोग के अनेक प्रकार,

और तो और, इनके रंग संयोजन आपके सौन्दर्य बोध को कुछ क्षणों के लिए कैद कर लेता है।

परंपरागत रूप से, नागा मानव प्रतिमान या बिम्ब के साथ-साथ, अनेक जानवर और पशु-पक्षी की भी आकृति बनाते हैं। कहने की जरूरत नहीं है कि सभी बिम्ब और आकृति से उनको कुछ-न-कुछ मिलता है। उदाहरण के लिए, जब नागा युद्ध में प्रतिपक्ष समूह के लोगों का सिर काट लेते थे, तो उनका सम्मान किया जाता था। सिर को घर लाकर एक वीर नागा के रूप में उसकी पूजा करते थे। फिर उस सिर को अपनी कलाओं में खासकर काष्ठ-कला की नक्काशी में उसको गंभीरतापूर्वक उकेरते थे। अब अस्सी साल से ऊपर हो गया है, नरबलि या हेड हंटिंग के कृत्य का अंत हो चुका है। फिर भी उसको चित्रित करते ही रहते हैं।

मानवीय आकृतियों के बनाने के पीछे इनकी मान्यता है कि उनको शौर्य और संतान प्राप्ति में मदद मिलेगा। इसके अलावा, नागा जंगली भैंसे के सिर, हाथी, बाघ, सांप, हॉर्नबिल और बारबेट पक्षी, छिपकली, बंदर, गिरगिट, कभी-कभी मछली आदि की आकृति या मोटिफ का निर्माण करते हैं। इनसे, इनको कुछ न कुछ तो मिलता ही है। सन्दर्भ के लिए, कह दूँ कि हाथी की आकृति से ये बल प्राप्त करते हैं तो बाघ से धैर्य, बल और रक्षा। भालू के मोटिफ से इनको यश की प्राप्ति एक रणबाँकुरे योद्धा और शिकारी के रूप होती है। बारबेट चिरै या चिड़िया से भाग्य खुलता है और यश की प्राप्ति होती है। बंदर के मोटिफ इनके चातुर्य और तीक्ष्ण दिमाग को संचालित करते हैं।

अगर नागा इतिहास की ओर जाएँ, तो लकड़ी के नक्काशी को काले, टेराकोटा एवं उजले पिगमेंट से रंगीन बनाया जाता था। उपर्युक्त सामग्री बिना पैसे खर्च किये प्रकृति से लिए जाते थे (आज भी अनेक जगह यह परंपरा कायम है)। अगर नागा आर्किटेक्चर का सबसे सुन्दर रूप देखना चाहते हैं तो उनके मोरुंग को एक बार देख लें। वहाँ मोटिफ, पैटर्न, कला, नक्काशी, आर्किटेक्चर और सौन्दर्य के सभी प्रतिमान एक साथ मिल जायेंगे। दुर्भाग्य से, मोरुंग की परम्परा सभी नागाओं में समाप्त हो चूकी है। एक सुखद परम्परा, नागा समुदाय यह स्थापित कर रहे हैं कि कल्चरल हेरिटेज के रूप में गाँव-गाँव में मोरुंग का मॉडल बनाकर बाहर के लोगों के लिए और अपने आनेवाली पीढ़ी के लिए छोड़ रहे हैं, जिससे उनको यह पता चले कि उनके पूर्वज कभी इतने कलात्मक मोरुंग भी बनाते थे।

9

नागा प्रेमी और नागा और मैतेई का प्रेम विवाह

चलिए आज एक सच्चे नागा प्रेमी की बात करते हैं। कौन है यह? यह है मणिपुर का एक काबुई नागा अमर कामेई। वैसे तो, अमर को मैं पिछले ग्यारह साल से जानता हूँ, लेकिन उसका समर्पित प्रेमी का स्वरुप 2019 के दिसम्बर में समझ पाया। यह भी समझ पाया कि अमर की पत्नी मैतेई है और दोनों ने आपसी रजामंदी से परिवार की असहमति के बावजूद प्रेम विवाह के रूप में कोर्ट मैरिज किया। अमर के माता-पिता ने तो विवाह को स्वीकार कर लिया, लेकिन उसके ससुराल वाले किसी भी स्थिति में मानने के लिए तैयार नहीं थे।

मैं मैतेई भोजन का मुरीद रहा हूँ। उबले चावल; बारीक कटी हुई बाँस की जड़, सूरज की नर्म रोशनी में सूखा हुआ अत्यधिक लघु आकृति की झींगा मछली, पत्ता गोभी, नींबू, हरी मिर्च आदि से बना सलाद; किण्वित केले और बाँस के गूदे में पकाई गई सब्जियां; रसदार मछली; तली हुई मछली और कई सब्जियां, सभी को एक बड़े प्लेट के ऊपर केले के पत्ते पर परोसा गया हो, तो ऐसे भोजन अनायास आपके मुंह में पानी उत्पन्न करते हैं। रसोइया धोती मात्र पहनता है और अपने शरीर में पवित्र जनेऊ धारण करता है। वह

भोजन परोसते समय स्वच्छता के सर्वोत्तम उपायों को बनाए रखता है और अपने मुंह को सफेद कपड़े से ढक लेता है। जब भी मैं मणिपुर जाता हूँ, इम्फाल पहुंचते ही पोलो ग्राउंड मार्केट में स्थानीय भोजन खाने जाता हूँ।

अब इम्फाल से 85 किलोमीटर की दूरी पर स्थित उखरुल हिल स्टेशन के लिए निकाल गया हूँ। उखरुल तांगखुल नागा समुदाय का गढ़ है। पहाड़ी सड़क को इम्फाल से उखरूल पहुंचने में 3 घंटे से अधिक समय लगता है। कार की सवारी आपको स्वर्ग के बहुत करीब ले जाएगी। कुंवारी जंगल, पहाड़ियाँ, पथरीले रास्ते और प्रकृति आपको अपनी यात्रा के शुरू से अंत तक व्यस्त रखेगी। यह हिल स्टेशन नासमझ और निर्दयी पर्यटकों से भरा हुआ नहीं है।

तांगखुल नागा सांस्कृतिक रूप से बहुत ही प्रफुल्लित रहने वाले और मौज-मस्ती करने वाले लोग हैं। वे हमेशा अपनी प्राकृतिक मुस्कान के साथ प्रतिदान करते हैं। वे सुंदर, मजबूत और पुष्ट लोग हैं। वे नर्तक, गायक और संगीतकार हैं। वे प्रकृति, मनुष्य और संस्कृति से प्यार करते हैं। उन्हें अपनी नागा पहचान और अपने पूर्वजों पर भी गर्व है। उखरूल के अधिकांश नागा, कहते हैं कि 99 प्रतिशत, अब ईसाई हैं। हालाँकि, ईसाई धर्म ने स्वदेशी सांस्कृतिक पहचान, अनुष्ठानों, पैतृक पूजा, त्योहारों, भोजन, मौज-मस्ती और उल्लास के बारे में अपनी मूल धारणा को नहीं बदला है।

यहां के लोग पढ़े-लिखे और सुसंस्कृत हैं।

दो दिन उखरूल में रहने के बाद मैं वापस इंफाल आ गया। इंफाल में अभी मुझे रहना है और हमारे ठहरने का प्रबंधन पहले से

ही आयोजक संगीत नाटक अकादमी द्वारा होटल भीगो (HOTEL BHEIGO) में किया गया था।

अचानक मुझे अपने फेसबुक मैसेंजर पर इम्फाल के संगाइप्रौ गांव के काबुई नागा अमर कामई का एक संदेश मिला कि वह मुझसे मिलना चाहते है। मैं उसे तुरत अपने होटल का नाम कमरा नंबर और लोकेशन भेज दिया।

कुछ ही क्षण में अमर, रूबेन के साथ होटल भीगो में मेरे कमरे में आ गया। अमर और रूबेन दोनों रचनात्मक और सामाजिक रूप से अपने गांव के युवाओं के बारे में चिंतित हैं। यह गाँव, संगाइप्रो काबुई नागाओं का एक शहरी गाँव है। यह एक सुव्यवस्थित गाँव है, जिसे विभिन्न पहाड़ी गाँवों के काबुई नागाओं द्वारा धान और अन्य चीजों को उगाने के लिए एक अस्थायी गाँव के रूप में स्थापित किया गया था। अब, हालांकि, यह उनके लिए एक स्थायी निवास है। यह गांव अच्छी शिक्षा, समाज कल्याण की भावना, नारी शिक्षा और स्वच्छता के लिए जाना जाता है। आपको इस गांव की सड़कों, गलियों या आसपास में कहीं भी कागज का एक टुकड़ा, प्लास्टिक या कोई भी कचरा नहीं मिलेगा। ग्रामीण संगठित हैं और अपनी सफाई और स्वच्छता के साथ-साथ, गांव की स्वच्छता के बारे में भी बहुत चिंतित हैं। मैंने कभी किसी को सड़क पर, सड़क के किनारे या सार्वजनिक स्थान पर थूकते हुए नहीं देखा। यह एक अद्भुत और आत्मसात करने वाला अभ्यास है। हर कोई जो खुद को सुसंस्कृत, शिक्षित, उन्नत और आधुनिक होने का दावा करता है, उसे इस गाँव के काबुई नागाओं से सीखना चाहिए कि कैसे अपने आवासों को साफ, स्वच्छ, व्यवस्थित और सुन्दर रखा जाए।

हुआ यह था कि मैंने अपने एक पार्टनर एनजीओ के काम के सिलसिले में उस गाँव का भ्रमण सुबह-सुबह ही किया था। किसी ने अमर और रुबेन को इसकी सूचना दे दी। फिर क्या था, आते ही, दोनों मुझसे शिकायत करने लगे, "मिश्रा सर, आपने हमें मणिपुर की अपनी यात्रा के बारे में सूचित क्यों नहीं किया? और आप हमारे गाँव भी गए और चुपके से वापस भी आ गए। रूबेन की पत्नी के माध्यम से ही हमें इस बारे में पता चला। उसने आपको गाँव के बैपटिस्ट चर्च के पास देखा और शहर में आपके आगमन की सूचना देने के लिए हमारे पास दौड़ी चली आई।" मुझे अपनी गलती का एहसास हुआ। मैंने उन दोनों से माफ़ी मांग ली। मैंने कहा: "अच्छा लगा कि आप दोनों मुझसे मिलने और कुछ परियोजनाओं पर चर्चा करने के लिए यहां आए हैं।" अब रूबेन मुझसे बात करता है: "सर, वास्तव में, मैंने और मेरी पत्नी ने आपको सार्वजनिक मंचों पर विभिन्न मुद्दों पर बोलते हुए सुना है। मैंने अपने साथी ग्रामीणों, पुरुषों और महिलाओं और युवाओं और बच्चों के लिए आपका एक सार्वजनिक भाषण आयोजित करने की योजना बनाई थी। अगर हमें पहले से पता होता, तो हम ऐसा कर सकते थे।"

"चिंता मत करो दोस्त", मैंने नम्रता से जवाब दिया, "मैं अब बार-बार आऊंगा और अक्सर ग्रामीणों से बातचीत करूंगा। आइए पहले कॉफी या चाय पी लें। बताओ, क्या पसंद करोगे, चाय या कॉफी?" वे दोनों बोल उठे: "कॉफी"। मैंने तीन कॉफ़ी का ऑर्डर दे दिया। परियोजना सम्बन्धी बातचीत के बाद मैंने अमर से अपने निजी जिंदगी के बारे में बताने के लिए निवेदन किया। अमर खिल उठा।

अमर बोलने लगा, “सर, मैं एक खुशहाल शादीशुदा काबुई नागा हूँ। हमारे दो बेटे हैं, बड़ा बेटा 12वीं कक्षा में है। मेरी पत्नी नागा नहीं है। वह एक मैतेई लड़की है। आप जानते हैं सर, मैतेई हिंदू होते हैं और हम काबुई नागा हैं और अब ईसाई धर्म के अनुयायी हैं। हमने प्रेम विवाह किया है। पिछले 18 सालों से हम पति-पत्नी हैं। हम दोनों अपने रिश्ते को महत्व देते हैं। मैं उसके धर्म का सम्मान करता हूं और वह मेरे धर्म का सम्मान करती है। वह गिरजाघरों में जाती है, हमारी प्रार्थनाओं में भाग लेती है। मैं मंदिरों में जाता हूं और हिंदू मैतेइयों के सभी धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेता हूं। मेरे बच्चे मंदिरों में जाते हैं और अपने नाना-नानी और उनके परिवार के सदस्यों के साथ सभी अनुष्ठान करते हैं।”

मैं बोल उठा: "यह तो बहुत अच्छा है! इस तरह आप सामंजस्यपूर्ण जीवन के अद्भुत उदाहरण प्रदर्शित करते हैं। आप उनके जीवन के तरीके, धार्मिक विश्वासों और संस्कृति का सम्मान करते हैं और आपकी पत्नी भी वैसा ही बर्ताव करती हैं। बहुत अच्छा अमर, मुझे यह पसंद है। इसे जारी रखो। रिश्तों को अक्षुण्ण रखने के लिए मानवता, प्यार, देखभाल और दूसरों की संस्कृति का सम्मान सबसे अच्छा मंत्र है। क्या आपके ससुराल वालों ने, आपके प्रस्ताव को आसानी से स्वीकार कर लिया था?”

“नहीं सर”, अमर बोला, “यह बहुत मुश्किल काम था। उन्होंने हमारा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। हमने चर्च में और कोर्ट में भी गुपचुप तरीके से शादी की। उन्होंने हमसे अपना रिश्ता ख़त्म कर लिया।” इतना कहने के बाद अमर रुका। फ़िर बोलने लगा: “सर, हम अपने कॉलेज के दिनों से प्यार करते थे। हम आकस्मिक प्रेमी

नहीं थे। हम शादी करना और साथ रहना पसंद करते थे। हमारी दोस्ती और घनिष्ठ संबंध की शुरुआत में, मेरी पत्नी ने अपने माता-पिता, परिवार के सदस्यों और रिश्तेदारों के रूढ़िवादी रवैये के बारे में स्पष्ट कर दिया था। इसने हमें एक-दूसरे से प्यार करने से नहीं रोका। हमने अदालत में गुप्त रूप से शपथ मजिस्ट्रेट के सामने शादी की और हमारे माता-पिता को अन्य स्रोतों से ही इस बारे में पता चला। मेरे माता-पिता ने शुरुआती नाराजगी के साथ हमारी शादी को स्वीकार कर लिया। हमारे माता-पिता और बड़ों ने भी हमें अपना घर, रसोई और कबीले साझा करने की अनुमति दी थी। यह हमारे लिए बड़ी राहत की बात थी। मेरी पत्नी के माता-पिता, भाई और रिश्तेदार हमारी शादी के पूरी तरह खिलाफ थे। और तो और, उन्होंने अपनी बेटी के साथ सारे रिश्ते तोड़ दिए। हमने हिम्मत नहीं हारी और उन्हें अपने रिश्ते को स्वीकार करने के लिए राजी करते रहे। समय बीत रहा था और हर गुजरते दिन, हमें उनकी स्वीकृति मिलने की उम्मीद होती थी, लेकिन उन्होंने अपना मन नहीं बदला। वे कितने निर्दयी थे! मेरी पत्नी गर्भवती हो गई। मैंने उन्हें इस बारे में जानकारी दी। इस बार भी उन्होंने अपनी बेटी के लिए अपनी चिंता नहीं दिखाई। जो भी हो, मेरी पत्नी ने प्रथम बेटे को जन्म दिया। खुशी-खुशी हम अपनी पत्नी और नवजात बेटे के साथ अपने घर वापस आ गए। हमने अपने बेटे के नामकरण समारोह में अपने रिश्तेदारों को याद किया। इसके बाद जनजीवन सामान्य हो गया। हमने अब अपना मन बना लिया और अपने ससुराल वालों से अपनी शादी की मंजूरी मिलने की कोई उम्मीद छोड़ दी। मेरी पत्नी सामान्य थी, लेकिन कभी-कभी वह उन्हें बुरी तरह याद करती थी।

आप अपने माता-पिता, भाई-बहन और परिवार के सदस्यों के साथ अपने बंधन को कैसे भूल सकते हैं? यह असंभव है। मानव मन को ऐसे बंधन और संबंधों की जरूरत होती है। यह मेरी पत्नी की स्वाभाविक सोच थी। हालाँकि, उसने कभी कुछ शिकायत नहीं की, लेकिन एक इंसान के रूप में मैं उसके दर्द और अलगाव के दर्द को महसूस करने में सक्षम था।"

अमर बोलता रहा: "समय का पहिया, अपनी स्वाभाविक गति से घूम रहा था। मेरी पत्नी अब मेरे दूसरे बच्चे की माँ बननेवाली थी। उसे कुछ प्रारंभिक स्त्रीरोग संबंधी जटिलताओं का सामना करना पड़ा। हमने डॉक्टरों से सलाह ली और एक बार फिर अपने ससुराल वालों से भावनात्मक समर्थन के लिए हमारे पास आने का अनुरोध किया। मैं आपको स्पष्ट कर दूं कि मैंने उनसे कभी किसी उपहार या वित्तीय सहायता की अपेक्षा नहीं की थी। हमारे लिए भावनात्मक एकजुटता सबसे बड़ी ताकत थी। और दुख की बात है कि हमें उनकी ओर से यह उपकार नहीं मिला।"

प्रसव के समय मेरी पत्नी मरने के कगार पर चली गई थी। हम लाचार थे। मैंने अपनी पत्नी के बचने की उम्मीद भी छोड़ दी थी। मैं एक मरते हुए बच्चे की तरह रोया। मैंने उन्हें अपनी बेटी का चेहरा देखने के लिए अस्पताल आने के लिए बुलाया। लेकिन मेरे ससुराल वालों ने अपना इरादा नहीं बदला। वे हमसे नफरत करते थे, हमें नापसंद करते थे। जब एक बेटी जीवन और मृत्यु से जूझ रही थी तो माता-पिता अपनी बेटी को संकट के समय में कैसे छोड़ सकते थे? लेकिन उन्होंने ऐसा ही किया। वे हमारे पास नहीं आए। मैं रोता रहा और उन्होंने मेरी विनती पर ध्यान नहीं दिया।

उन्होंने हमारा फोन उठाना भी बंद कर दिया। मेरे ससुर ने एक बार मेरा फोन उठाया। मैंने उनसे कहा, "मैं रिश्तों के बारे में आपकी पूरी धारणा को गलत साबित करने जा रहा हूं। आप हमें स्वीकार नहीं कर रहे हैं क्योंकि मैं नागा और आप एक मैतेई हैं। मैं साबित करूंगा कि रिश्ते धार्मिक विश्वासों और सामुदायिक पहचान से ज्यादा शक्तिशाली हैं। मैं यह साबित कर दूंगा कि हालांकि मैं नागा हूं, मैं परिवार में आपके सबसे प्यारे बेटों में से एक हूँ। दुर्भाग्य से, मेरे ससुर ने अपना रुख नहीं बदला और हम सभी को उस समय अकेला छोड़ दिया जब हमें उनकी सबसे अधिक जरूरत थी।"

अमर बोलता रहा। लगता था सभी दृश्य उसके मस्तिष्क पर सिनेमा की रील की तरह घूम रहे थे। वह बोला: "दुःख के बादल अंततः छटने लगे। मेरी पत्नी ने हमारे दूसरे बच्चे, बेटे को जन्म दिया। यह एक सिजेरियन बेबी था। मुझे यद्यपि अपनी पत्नी और नवजात बच्चे के जन्म के बाद भी उन्हें 15 दिनों तक अस्पताल में रखना पड़ा। ईश्वर की कृपा से मैं अपनी पत्नी और बेटे को वापस अपने घर ले आया। यह हमारे जीवन का सबसे शुभ दिन था।"

इसी बीच, एक दिन सुबह-सवेरे मेरी पत्नी की बड़ी बहन हमसे मिलने हमारे घर आई। उसने हमें अपने बेटे के उपनयन संस्कार में आमंत्रित किया। हमने उनके प्रस्ताव को यह कहते हुए स्वीकार नहीं किया कि जब हम उन्हें चाहते थे तो कोई हमारा समर्थन करने नहीं आया। अब, हम वहाँ क्यों जाएँ? वह बहुत सकारात्मक और विनम्र थीं। यहां से हमें पता चला कि मेरा साला अपने माता-पिता का सम्मान नहीं करता है। उसे उनकी परवाह नहीं है। यह मेरे लिए गंभीर मामला था। मेरी पत्नी की बहन ने हमें अपने घर और मेरे

ससुर के पैतृक गांव का दौरा करने के लिए राजी किया। हम प्रस्ताव पर सहमत हुए और अपनी पत्नी और बच्चों के साथ वहां गए।

“मैतेई समाज में दामाद सबसे बड़ा और सबसे सम्मानित अतिथि होता है। लोग फर्नीचर, आभूषण, कपड़े, खाने की सामग्री एवं अनेक उपहार देते हैं। वाहन और अन्य सामान दिए जाते हैं। दहेज के रूप में एक बड़ी राशि भी दी जाती है और उन सभी को सम्मान या प्रेम के रूप में लिया जाता है। मैंने अपने ससुराल जाने से पहले शर्त रखी कि हम उनसे किसी भी रूप में कोई उपहार स्वीकार नहीं करेंगे। मेरी सास ने दो आलीशान लकड़ी के सोफे, कपड़े, कुछ गहने आदि का ऑर्डर दिया। उन सभी ने मुझे प्यार के प्रतीक के रूप में स्वीकार करने के लिए राजी किया। मैंने झिझकते हुए आगे बढ़कर एक छोटा-सा सोफ़ा उठाया और कुछ भी नहीं छुआ। हमने अपने बच्चों से कहा कि वे अपने नाना-नानी, मामा, मामी, मौसी और सभी बड़ों के चरण हिंदू जीवन शैली के अनुसार स्पर्श करें। उनके साथ मंदिरों और सभी धार्मिक स्थलों की यात्रा करें। हमने उनसे कहा कि वे निर्धारित रीति-रिवाजों का पालन करें और उनकी भावनाओं का सम्मान करें। वे हमारे निर्देशों और दिशानिर्देशों का पालन करते हैं।"

“अब, हम एक संयुक्त परिवार हैं। हमारे ससुराल वाले हमसे प्यार करते हैं। हमारे बच्चे उनकी जीवनरेखा हैं। हमारे ससुराल वाले हमसे सलाह किए बिना कोई फैसला नहीं ले सकते। उन्हें हमारे धर्म और समुदाय से अब कोई शिकायत नहीं है। वे हम पर गर्व महसूस करते हैं और हमारी भावनाओं का सम्मान करते हैं। मेरी पत्नी, मेरे माता-पिता और अपने माता-पिता के साथ समान

भावना से पेश आती है। उसने, हमारा और हम दोनों के माताओं-पिताओं का दिल जीत लिया है। यह हमें हमारी संस्कृति से आत्यंतिक रूप से जोड़ता है। अब हम एक बहुल और सामंजस्यपूर्ण समाज के सदस्य हैं।"

"सर", अमर कामई कहते हैं, "मुझे हमारे ससुराल वालों से कुछ भी नहीं चाहिए, मुझे उनके प्यार, आशीर्वाद और सहयोग की ज़रूरत है। हमें उनसे ये चीजें बहुतायत में मिल रही हैं। हम दुनिया के सबसे खुश लोग हैं। उन्हें हम पर गर्व है और हम उनके साथ जुड़े हुए हैं। हमारे परिवार जाति और जनजाति के बीच, मैदानी और पहाड़ी लोगों के बीच, दो धार्मिक समुदायों के लोगों के बीच असद्भाव के कई उदाहरण हैं, फिर भी हम एक हैं। हम एकत्रित हैं।"

इसी के साथ अमर अपनी प्रेम-कथा का समापन करता है। मुझे उसके इशारे पसंद हैं। उनमें मैं काबुई नागा का एक विशिष्ट प्रतिनिधि देखता हूं, जो धार्मिक और सांस्कृतिक सीमाओं से परे लोगों से प्यार करता है। अमर को इंसानियत पसंद है। वह एक बढ़ते हुए छात्र के रूप में अपनी पत्नी से प्यार करता था। उसने अपने रिश्ते को पूरा किया और आखिरकार शादी करने और पति-पत्नी के रूप में रहने का फैसला किया। वह अपनी प्रेमिका के प्रति सच्चा है, जो बाद में उसकी पत्नी बनी। अब वह अपनी पत्नी, अपने पिता, माता, भाई, धर्म और हर चीज से प्यार करता है। वह उसी उत्साह के साथ अपने ससुराल, उनकी संस्कृति, धर्म और भावनाओं से प्यार करता है। वह एक शांतिप्रिय व्यक्ति है। वह लोगों से प्यार करने और लोगों का सम्मान करने के लिए जीता है। उसकी कथनी-करनी में फर्क नहीं है। उसके बराबर कोई नहीं है।

10

सरकारी कार्य, प्रोटोकॉल एवं अवसरवादिता

उत्तर-पूर्व भारत में कार्य करना सहज नहीं था मेरे लिए। एक बार श्री बी पी सिंह, भूतपूर्व राज्यपाल, सिक्किम के साथ बहुधा नामक परियोजना में, मैं उनके साथ डेपुटेशन में शोध अधिकारी के रूप में कार्य कर रहा था। उस परियोजना के कारण मैं केरल, पश्चिम बंगाल, झारखण्ड और असम गया। वहां के लोगों से मिलकर लोक-जीवन में सद्भाव के उदाहरण प्रस्तुत करने थे। सभी जगहों पर मैंने ईमानदारी से कार्य करने का उत्तम प्रयास किया। असम का उदाहरण सर्वोत्तम था। असम के हाज़ो में काम करना, मेरे लिए आसान हो गया था। क्योंकि बी पी सिंह असम कैडर के आईएएस अधिकारी थे। वहाँ मुझे हरपल हरसंभव मदद मिला। हाजो सद्भाव का सर्वोत्तम स्थान है, जहां हिंदू, मुसलमान एवं बुद्धिस्ट तीनों धर्म के लोग जाते हैं। यहां भगवान विष्णु के हयग्रीव अवतार अर्थात अश्वावतार को पुष्ट करता हुआ विलक्षण मंदिर और मूर्ति है। इसी स्थान अर्थात हाजो को बज्रयानी बुद्धिज़्म से जोड़ कर भी देखते हैं। हाजो में अनेक मंदिर हैं जिसपर हिन्दू और बौद्ध अपनी पूजा अर्चना करते हैं। दोनों समुदाय में कोई विवाद नहीं है। थोड़ा ऊपर चलिए तो एक मनिकूट पहाड़ी है जिस पर पोआ मक्का है। क्या है ये पोआ

मक्का? कहते हैं कि एक सूफी संत गियासुद्दीन जो हजरत मुहम्मद साहब का दूर का सम्बन्धी था, मक्का से एक पौआ अर्थात किलो का चौथा भाग मिट्टी लेकर घूमते-टहलते यहाँ पहुँच गया। यहाँ पर वह लोगों को प्रेम, भाईचारा का पाठ पढ़ाने लगा। लोग उसके संगत में आने लगे। गियासुद्दीन अपने साथ लाये एक पौआ मिट्टी को एक आश्रम के नीव के अंदर रख दिया। वह सच्चे दिल से लोगों की सेवा करता। उसके मरने के बाद लोगों ने उसे वहीं दफना दिया। आज भी उसका मज़ार वहाँ है। पोआ मक्का में मुसलमान से अधिक हिन्दू जाते हैं। वहाँ का खादिम अल्लाह से और गियासुद्दीन से हरेक आगंतुक के लिए दुआ मांगता है। उसके शब्द असमिया भाषा के होते हैं। मान्यता है कि अगर कोई मुसलमान आर्थिक तंगी और किसी अन्य कारण से मक्के का हज नहीं कर पाता है तो घबराने की जरूरत नहीं है। एक बार पोआ मक्का आने से एक चौथाई हज करने का फल मिलेगा उसको। अगर उसने चार बार पोआ मक्का का दर्शन कर लिया तो हो गया पूरा हाजी।

बहरहाल! जब मैंने अपना रिपोर्ट विस्तार से लिखाकर श्रीमान् बाल्मीकि प्रसाद सिंह को दिया तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा: "कैलाश! मुझे तुम पर उतना ही गर्व हो रहा है जितना एक पिता को अपने पुत्र पर!" बाल्मीकि प्रसाद सिंह अनेक लोगों से मेरे द्वारा किये गए कार्यों की सराहना करते रहे।

मैं भारत सरकार के एक कला संस्थान के उस अपाहिज अथवा शापित विभाग का शोधार्थी था, जो दुर्भाग्य से सबसे कनिष्ठ था। वहाँ दो को छोड़कर सभी शोधकर्मी परंपरागत सरकारी नौकरी करने वाले थे। एक महिला थी. चलिए उनका एक कल्पित नाम गढ़

लेता हूँ – टीना। टीना ऐसी थी जो हर बात को चिल्लाकर और अंग्रेजी के शब्दों के भार से सुनाकर लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने का कोई अवसर नही चूकती। आधुनिकता के अनेक गुण और दुर्गुण भरे पड़े थे उनमें। हिमाचल के गद्दी समुदाय पर कार्य कर रही थीं। शिव को शाश्वत मानती थीं। गद्दी समुदाय के लोगों के बीच, शायद ही कभी एक सप्ताह लगातार रही हों, लेकिन अपने सभी सोच और विचार को गद्दी के मुख से निकालती थीं। एक और गुण था उनमें, वो एक नंबर की दरबारी थीं। कोई भी विभागाध्यक्ष, सदस्य सचिव आते, उनको सम्मोहन में लेने के किसी भी उपाय को नहीं छोड़ती थीं।

जब मेरा चयन हुआ था, तब वह भी इंटरव्यू बोर्ड में थी। बाद में, जब मैं ज्वाइन किया, तो बोलीं: "तुम बहुत अच्छा बोले। खूब पढ़ो।" मैं तो उनके अंग्रेजी बोलने के अंदाज का कायल हो चुका था। उनके सामने कुछ बोलने की हिम्मत भी नहीं कर सकता था। एक दिन एक वरिष्ठ और ख्यातिप्राप्त प्रोफेसर मुझे अपने चैम्बर में बुलाकर कहने लगे: "लगता है, आजकल आप डॉ टीना के ज्ञान गंगा में डूबते जा रहे हो?"

मैंने विनम्रता से सिर हिलाते हुए कहा: "ग़जब आभा है उनमें सर।"

प्रोफेसर साहब मेरे भ्रम को तोड़ते हुए बोले: "सब बकबास। कुछ नहीं आता है उसको। केवल चिल्लाकर लोगों का अटेंशन खींचना विद्वता नहीं है। उसको सुनो। उसका नोट बनाओ। फिर पढ़ो तो लगेगा, इसे कुछ नहीं आता। अगर आता होता तो मैं क्यों नहीं अपनी परियोजनाओं में उसको रखता हूँ। अपना समय बर्बाद मत

करो। अपनी लगन और मेधा से शोध करो। सारा संसार तुम्हारा है।"

प्रोफेसर साहेब ज्ञान के भंडार थे। रोल मॉडल थे। उनके बात पर शंका करने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। मैं अगले दिन से थोड़ी दुरी बनाने लगा। एक सेमिनार में जब वह अपना आलेख पढ़ रही थीं, तो मैं गम्भीरता से उनके कहे शब्दों का नोट बनाने लगा। जब रात को उस नोट का अवलोकन करने लगा, तो पता चला कि प्रोफेसर साहब बिलकुल सही कह रहे थे।

एक और सीनियर महोदय थे। इनका नाम डॉ चिरका गढ़ लेते हैं। पढ़ने में मेधावी, परन्तु बेजोड़ कामचोर। किसी काम को कैसे नहीं किया जा सकता है, अगर आपको इसका पुख्ता और प्रमाणिक नोट बनवाना हो, तो इनके पास आ जाएँ, आपका काम तुरत कर देंगे। हाँ, उनसे सकारात्मक सोच की बात न करें। एक अन्य महिला ऐसी अवश्य थी, जो अपनी धुन में लगी रहती थी, लेकिन जूनियर थी और डॉ टीना किसी भी अवस्था में उनको अपने से आगे बढ़ते हुए नहीं देखना चाहती थी। अंततः वह बेचारी संस्थान छोड़कर कहीं और चली गयी। एक और कश्मीरी बंधु थे। पढ़ने में सामान्य। अपनी बात को भी बहुत प्रभावी तरीके से नहीं रख पाते थे। पब्लिक स्पीकिंग का सेन्स नहीं था उनमें, लेकिन थे सतत् संकल्पित। समय से आना। समय से जाना। अपने कार्य में लगे रहना, उनके सकारात्मक गुण थे। वे आगे बढ़ रहे थे। एक थीं छोटी सी, प्यारी सी स्कॉलर इनका नाम डॉ त्रिवेणी रख लेते हैं। बहुत सुन्दर। छोटे कद की। बड़ी-बड़ी आँखें। दूधिया गोराई। टॉम बॉय छवि की मल्लिका। बड़े माता-पिता की संतान थीं, इस बात का गौरवबोध भी

था उनको। किसी काम को परफेक्शन के नाम पर कितना अधिक टाला जाय, इस कार्य में अतिशय निपुण थीं।

इस परिवेश में मेरा होना और सभी से जूनियर होना, आप कल्पना कर सकते हैं, कितना कठिन कार्य रहा होगा मेरे लिए। कुछ भी हो, जीवन तो चल ही रहा था। सभी प्रसंग को दरकिनार करते हुए, उत्तर-पूर् भारत में मेरे प्रवेश का वृतांत कहना जरूरी है। अभी उसी पर अपनी बात को केन्द्रित करता हूँ।

एक नए ज्वाइंट सेक्रेटरी आये थे श्री अजय नारायण झा। उनको बाल्मीकि प्रसाद सिंह ने मेरा रिपोर्ट दिया था, पढ़ने के लिए। ज्वाइंट सेक्रेटरी महोदय रिपोर्ट पढ़कर बहुत खुश हुए। उनके ऑफिस से मुझे बुलाया गया। मैं डरते हुए गया। वे खुद मणिपुर और त्रिपुरा कैडर के आईएएस अधिकारी थे। बोले: "मैंने आपका रिपोर्ट पढ़ा है। बहुत अच्छा है। मैंने गर्दन हिलाकर और हाथ जोड़कर उनका अभिवादन किया।

ज्वाइंट सेक्रेटरी श्री अजय नारायण झा बोले: "एक बात बताइए, अगर आपको कहें कि उत्तर-पूर्व भारत में आपको पचहत्तर लाख रूपये पांच महीने में खर्च करने हैं, तो क्या आप कर देंगे?"

मैं बोला: "सर, अगर यहाँ का प्रशासन, एकाउंट्स साथ दे, तो मैं 2 करोड़ खर्च कर दूंगा। लेकिन, विभाग के लोगों का सहयोग भी आवश्यक है।"

ज्वाइंट सेक्रेटरी बोले: "आप इसकी चिंता मत करें। मैं कल ही एकाउंट्स, एडमिनिस्ट्रेशन और आपके विभाग के सभी शोधार्थी की मीटिंग करता हूँ। आप बिना डर के अपनी बातों को रखना।" इतना कहते हुए, उन्होंने अपना व्यक्तिगत मोबाइल नंबर मुझे दे दिया।

दूसरे दिन, मीटिंग के लिए जाने से पहले, सभी लोगों ने मुझे निर्देश दिया कि अपनी ओर से कुछ भी नहीं बोलना। प्रोटोकॉल का पालन करना सीखो। सबसे जूनियर हो, एकदम मत बोलना। अगर उच्च अधिकारी कुछ पूछते हैं, तो सीमित शब्दों में उत्तर देकर बैठ जाओ। यही परम्परा है। मुझे लग रहा था, आखिर सब मेरे लिए इतना क्यों सोच रहे हैं। विस्मित हो रहा था मैं। मुझे भय यह था कि अगर मैं कुछ नही बोलूँगा तो ज्वाइंट सेक्रेटरी महोदय क्या सोचेंगे?

मीटिंग स्थल का दृश्य कुछ अलग था। ज्वाइंट सेक्रेटरी महोदय बोले: "हमें अपने पुरे बजट का 10 प्रतिशत उत्तर-पूर्व में खर्च करना ही करना है। दुर्भाग्य से यह राशि अभी तक नगण्य है। हमारे पास समय बहुत कम है। आप बतायें कैसे हम लोग कम से कम 75 लाख रूपये का दिखनेवाले सार्थक कार्यक्रम और स्पष्ट कार्यक्रम पांच महीने के भीतर कर सकते हैं?"

सभी लोग चुप थे। डॉ टीना अवश्य इशारे से मुझे अपना मुंह नहीं खोलने का निर्देश दे रही थीं।

कुछ देर के बाद, ज्वाइंट सेक्रेटरी फिर बोले: "अरे, आप सभी चुप हैं? कुछ सुझाव क्यों नहीं मिल पा रहा है? अगर काम नहीं करेंगे तो क्या उत्तर देंगे मंत्रालय को हम लोग?"

अभी भी पूरा हॉल खामोश था। ख़ामोशी को तोड़ते हुए चीफ एकाउंट्स ऑफिसर महोदय बोले: "सर सभी स्कॉलर को एक-एक प्रोजेक्ट जमा करना चाहिए और यह भी उनको बताना है कि कैसे नियत समय में टारगेट पूरा करेंगे।"

ज्वाइंट सेक्रेटरी मेरी ओर इशारा करते हुए बोले: "मैंने आपका रिपोर्ट पढ़ा था, हाजो पर जो आपने लिखा था, यह बहुत अच्छा है।

कल आपको बुलाया भी था। आपने हमसे यह वादा किया था कि आप काम करने के लिए तैयार हो। आप बजट भी पूरा कर देंगे, ऐसा कह रहे थे। आपका कंसर्न केवल इतना था कि आपको एकाउंट्स और एडमिनिस्ट्रेशन बिना कारण परेशान न करे। अब आप चुप क्यों हो? आपके कारण ही मैंने एकाउंट्स एवं एडमिनिस्ट्रेशन के आला अधिकारियों को यहां बुलाया है।"

मुझे लगा, अब मैं बोलूं। बोलने के लिए उत्सुक हुआ कि आधुनिक महिला फिर हाथ के इशारे से और आँख दिखाकर मुझे चुपचाप बैठने का निर्देश देने लगी। संयोग अच्छा था। ज्वाइंट सेक्रेटरी महोदय ने इस बार उस महिला को मुझे आँख दिखाते हुए देख लिया था। वे गुस्से में उबल पड़े: "यह क्या नॉनसेंस है? आप लोग खुद काम नहीं करते, ऊपर से एक युवा शोधार्थी काम करने को उत्सुक है तो वो काम नहीं करे, ऐसा भय उत्पन्न कर रही हो।" मेरी ओर देखते हुए वे बोले: "आप अपनी योजना बताइये। हम लोग कल ही उस पर मंथन करेंगे।"

डॉ टीना गिरगिट की तरह रंग बदलते हुए बोली: "सर, मैंने तो इसे पहले अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए निर्देश दिया था। हम लोग इसके साथ हैं। जैसे कहेगा उस पर मंथन करके कलेक्टिव प्रोजेक्ट बना देंगे।"

इस बीच डॉ त्रिवेणी जो मेरी ही उम्र और श्रेणी की थी, परन्तु मुझसे पहले से यहां पर कार्य कर रही थीं, आगे आईं और बोली कि वह भी मेरे साथ उत्तर-पूर्व की परियोजनाओं पर कार्य करेंगी।

मैं बोला: "सर, निश्चित रूप से, मैं अपने विभाग के शोध विद्वानों के साथ एवं एकाउंट्स के लोगों के साथ मिलकर ही परियोजना के

सभी पक्ष पर गहन चिंतन कर उसका प्रारूप तैयार करूँगा। मेरा निवेदन केवल इतना है कि बेवजह एकाउंट्स अथवा एडमिनिस्ट्रेशन मुझे किसी भी फाइल के साथ बार-बार न बुलायें। इनको जो भी ऑब्जेक्शन या सुझाव देना है, तुरत लिखकर मेरे पास भेज दें। मैं उसका समाधान करूँगा।"

इस बात पर चीफ एकाउंट्स ऑफिसर एवं ज्वाइंट सेक्रेटरी राजी हो गये। मैंने अपने कुछ कार्यक्रमों की रूपरेखा उन्हें मौखिक रूप से बता दिया। हम सभी वापस आने लगे। ज्वाइंट सेक्रेटरी मुझे बोले: "तुम मेरे पास आओ। कुछ बात करनी है।"

ज्वाइंट सेक्रेटरी बोले: "ये न तो खुद काम करेंगे, ना ही तुझको काम करने देंगे। तुम मेरे पास अपनी परियोजना की कॉपी भेज दिया करो। मैं सभी को निर्देश दे दूंगा। कुछ और निर्देश देकर वे मुझे अगले दिन मिलने के लिए बोले। जब आया तो डॉ टीना अपने कक्ष में डॉ चिरका और डॉ त्रिवेणी को बैठाकर बातें कर रही थी। मेरे पहुँचते ही बोली: "मैंने तुमको कब मना किया था?"

मैं चुप रहा, डॉ चिरका बोल पड़े: "कभी नहीं। सरकारी संस्थानों में तो प्रोटोकाल का पालन करना ही पड़ता है।"

मैं बोला: "मैंने किसको कहा कि आप मुझे मना कर रही थी?"

डॉ. टीना बोली: "जब ज्वाइंट सेक्रेटरी बोल रहे थे मुझे, तब तुम्हें बोलना चाहिए था कि मैंने तुमको कोई निर्देश नहीं दिया था।"

मैं बोला: "आपने ही तो निर्देश दिया था कि सीनियर ऑफिसर के बीच नहीं बोलना चाहिए। फिर वे आपको कुछ बता रहे थे, जिसमें मेरी भूमिका नहीं थी।"

संयोग से डॉ त्रिवेणी कुछ नहीं बोली। मैं अपने रूम में आया, तो देखा कि दो लोग असम से आये हुए हैं: श्री गौतम शर्मा, सचिव, श्रीमंत शंकरदेव कलाकेन्द्र एवं उनके युवा सहयोगी श्री सत्यकाम गोगोई। दोनों ने अपना परिचय देते हुए कहा कि सदस्य सचिव ने आपसे मिलने के लिए कहा है।

दोनों से मिलकर बहुत खुश हुआ। चार बजे सायंकाल से आठ बजे रात्रि तक अलग-अलग राज्यों के लिए परियोजनाएँ बनाते रहे। कुछ देर के लिए डॉ. त्रिवेणी को भी बुला लिया। सभी परियोजनाओं को उसी समय ज्वाइंट सेक्रेटरी को ईमेल कर घर के लिए चल पड़ा। रास्ते में उनका फोन आ गया कि उन्होंने मेरे ई-मेल को पढ़ लिया है और सदस्य सचिव को भी फॉर्वार्ड कर दिया है।

सुबह जाते ही मुझे ज्वाइंट सेक्रेटरी के यहाँ से बुलावा आया। इस बार मैं डॉ. त्रिवेणी को साथ ले गया। जॉइंट सेक्रेटरी ने डॉ त्रिवेणी को निर्देश दिया कि सकारात्मक सोच के साथ वह काम करे। सदस्य सचिव के पास भी गए। उनके पास गौतम शर्मा पहले से पहुंचे हुए थे। डॉ चक्रवर्ती चीफ एकाउंट्स ऑफिसर, डायरेक्टर एडमिनिस्ट्रेशन और डॉ टीना को भी बुला लिए। सभी बजट को वहीं पर फाइनल स्वरुप दे दिया गया। डॉ. टीना मुझे खा जाना चाहती थीं, परन्तु थी लाचार। चुपचाप सभी फाइलों पर अपनी मुहर लगा दी। लेकिन, मुझे बरबाद करने की कसम तो खा ही ली थी। उधर ज्वाइंट सेक्रेटरी ऑफिस से यह फरमान निकाल दिया गया कि डॉ. कैलाश और डॉ. त्रिवेणी उत्तर-पूर्व भारत की सभी परियोजनाओं के लिए कोऑर्डिनेटर होंगे।

चिट्ठी मिलते ही, डॉ. त्रिवेणी कुछ अजीबोगरीब हरकत करते हुए डॉ चिरका के पास गयी। वे लोग वहाँ से डॉ टीना के पास गए। इन तीनों का यह सोचना था कि यह फरमान प्रोटोकाल एवं डॉ. त्रिवेणी के सीनियरिटी का उल्लंघन है। डॉ चिरका के साथ डॉ त्रिवेणी पहुँच गयीं, ज्वाइंट सेक्रेटरी के ऑफिस। उनके पीए ने जाकर ज्वाइंट सेक्रेटरी को सभी बातें बता दी। दोनों भीतर गये। ज्वाइंट सेक्रेटरी डॉ चिरका से बोले: "आप क्यों आये हैं? जाइए अपना काम कीजिये।" इस तरह से डॉ चिरका बेइज्जत होकर उनके कमरे से निकल पड़े।

ज्वाइंट सेक्रेटरी डॉ त्रिवेणी से बोले: "आपकी क्या समस्या है?"

डॉ त्रिवेणी बोली: "सर, प्रोटोकाल के हिसाब से मैं डॉ कैलाश से सीनियर हूँ।"

ज्वाइंट सेक्रेटरी बोले: "एक रैंक में सीनियर और जूनियर केवल प्रोमोशन के समय देखा जाता है, असाइनमेंट देने के समय नहीं। फिर भी, अगर आपको समस्या है तो अभी आपका नाम इस प्रोजेक्ट से हटा देते हैं। नाम आगे नहीं आया, इसके लिए आप यहाँ तक डॉ चिरका को लेकर आ गयी हैं, तो कल आप डॉ कैलाश को एक भी काम नहीं करने देंगीं।"

अब डॉ त्रिवेणी को अपनी गलती का एहसास हो चुका था। माफ़ी मांगते हुए बोली: "नहीं सर, हम दोनों अच्छे मित्र हैं।"

डॉ त्रिवेणी वापस आ गयीं। मुझसे कहने लगी: "डॉ चिरका के कहने पर मैं ज्वाइंट सेक्रेटरी के पास चली गयी थी। मैं भविष्य में तुम्हारे साथ मिलकर कार्य करूंगी।"

मैंने उनकी बात हंस के टाल दिया। अगले दिन 7 दिनों के लिए उत्तर-पूर्व भारत की यात्रा करनी थी। पहली यात्रा में डॉ त्रिवेणी बीच-बीच में अपना सीनियर होने का रॉब दिखाती रहीं। एक बार नार्थ ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी में, मैं विद्वानों के समूह को समझा रहा था। डॉ. त्रिवेणी बीच-बीच में मुझे अकारण रोक देतीं। मैं लाचार हो जाता। हमारे संस्थान के एक डायरेक्टर भी साथ थे। वे बोल पड़े: "त्रिवेणी, आप चुप क्यों नहीं रहतीं? डॉ कैलाश को बोलने दो।"

अब डॉ त्रिवेणी चुप हो गयी। गौतम शर्मा मानो पूरे उत्तर-पूर्व के लोगों को जानते रहे हों। वे बहुत मृदुल, उद्यमी, और समय के अनुशासित व्यक्ति थे। उन्होंने हमारा काम सहज कर दिया था। मणिपुर में ज्वाइंट सेक्रेटरी खुद हम लोगों से मिलने पहुँच गए। कार्य योजना देखकर खुश थे।

जब हम लोग 10 दिन की यात्रा की समाप्ति के बाद दिल्ली वापस आये, तो मीटिंग में ज्वाइंट सेक्रेटरी ने सबके सामने यह बोल दिया: "काम कैसे करना है, यह सीखना हो, तो आप लोग डॉ कैलाश से सीखिए।" यह वाक्य मेरे लिए काल और जी का जंजाल बन गया। डॉ टीना और डॉ चिरका दोनों क्रुद्ध होते हुए, उसी दिन से मेरे पीछे पड़ गए। काम तो मैं करता रहा, लेकिन पांच साल के बाद, मुझे इतना विवश किया गया कि मैंने अपना त्यागपत्र दे दिया। जानता हूँ कि उत्तर-पूर्व भारत की व्याख्या के लिए यह कोई जरुरी वाकया नहीं है, फिर भी सभी प्रकरण में यह भी एक महत्वपूर्ण कड़ी तो है ही। इस पर फिर कभी विस्तार से लिखूंगा कि गलत लोगों ने मेरे साथ क्या-क्या प्रपंच रचा। अभी बस इतना ही।

11

एसटीडी से जूझती मणिपुर की महिलाएँ: मरने से पहले जीने की तमन्ना

निश्चित ही उत्तर-पूर्व भारत से मेरा पूर्व जन्म का रिश्ता रहा है। कभी-कभी अवसर मिल ही जाता है, वहां के किसी क्षेत्र में जाने के लिए। लोगों से मिलने और उनके जीवन के एक या अनेक पक्षों को जानने-समझने के लिए। सभी अनुभव अनूठे हैं। एक-एक अनुभव को इन नैनों ने बंद कर रखे हैं, अपने इंटरनल मेमोरी में। यह मेमोरी खास है साहब। इसमें वायरस आ ही नहीं सकता। इसका इनबिल्ट एंटी वायरस कमाल का है। यह मेमोरी मेरे साथ है, मेरे साथ रहेगा। यह मेरे सांसों के साथ लयबद्ध होकर मधुर झंकार करते हुए चलता है – तेरे बिना जिया जाये ना"! इस बार जो अनुभव बांट रहा हूँ, उसको धैर्य और मानवीय संवेदना को जागृत करके पढ़िएगा। समझिएगा कि मृत्यु के पूर्व जो जीवन जीने का जज्बा है उसका आनन्द क्या है। अगर आप इस भाव से पढ़ेंगे, तो मानवीय पक्ष के परतों को कतरा-कतरा समझते जायेंगे।

हुआ यह कि मैं एक अंतरराष्ट्रीय गैर सरकारी संस्था के लिए मणिपुर के दो केंद्रों का विस्तृत बेसलाइन सर्वे कर रहा था। उद्देश्य यह भी था कि वहां का संपूर्ण एथनोग्राफीक दस्तावेज बना दूं। मैंने वहां की एक नागा लड़की, जो असम सेंट्रल यूनिवर्सिटी, सिलचर से

सोशल वर्क में पीएचडी कर रही थी, को रिसर्च स्कॉलर के रूप में रखा था। वह लड़की ईमानदारी से कार्य कर रही थी। आज वह मणिपुर ट्राइबल यूनिवर्सिटी में असिस्टेंट प्रोफेसर है।

जब वह एक महीना तक कार्य कर चुकी, तो मुझे लगा कि मैं जाकर देखूं कि बेसलाइन आख़िर किस दिशा में बढ़ रहा है। मैं वहां एक सप्ताह के लिए चला गया। उस केंद्र का संचालन एक मैतेई महिला सामाजिक कार्यकर्ता कर रही थी। वे संजय गांधी के समय से ही युवा कांग्रेस से जुड़ी हुई थी। लगातार तीन बार से विधानसभा का चुनाव लड़ रही थी और हर बार चंद वोट से पराजित हो जाती थीं। लेकिन थी वह जीवट। हार नहीं मानना, मानो उनके जीवन का अंतिम लक्ष्य था। अंततः, एक ऐसा दिन भी आया, जब वह चुनाव जीत गईं। विधानसभा की सदस्य बनी और महिला विभाग की मंत्री भी बनी। दो बार लगातार जीती भी और मंत्री भी बनी रही। उनका रुतबा देखने लायक था। समाज सेवा में इतना निपुण थी कि पक्ष को छोड़िए विपक्षी भी उनका सम्मान करते थे। समाज सेवा के व्रत को पूरा करने के चक्कर में, उन्होंने आजन्म कुंवारी रहने का व्रत लिया था।

तो हम उनके साथ कार्य कर रहे थे। उनके केंद्र पर उस गांव और अगल-बगल के 15 गांव से महिलाएँ आती थी। जिस गांव में केंद्र था, उसका नाम तुबैलुमा था। अनेक कार्यक्रम चल रहे थे। महिलाएं शॉल, फनेक आदि बुन रहीं थीं। जीवन का क्रम चल रहा था। एक महिला चप्पल, तो दूसरी जूते बनाने का कार्य कर रही थी। कुछ महिलाएँ, स्वयं सहायता समूहों का संचालन कर मेंबर महिलाओं को लघु व्यापार जैसे चूड़ी, सब्जी, फल, आदि के लिए

ऋण भी दे रही थीं। महिलाओं को नेतृत्व क्षमता विकसित करने के लिए, स्वरोजगार उन्मुख होने के लिए प्रशिक्षण भी दिया जा रहा था। कुछ महिलाएँ मधुमक्खी पालन का कार्य तो कुछ कुकुरमुत्ता की खेती भी कर रही थीं। जेंडर के प्रति जागरूक भी उन्हें किया जा रहा था। कुल मिलाकर, यहाँ का माहौल अच्छा था।

यह केंद्र विशिष्ट था, क्योंकि इसमें मैतेई, आदिवासी सभी महिलाएँ आती थी। सबकी सहभागिता निश्चित थी। लगभग 20 नागा महिलाएँ, भी जो इम्फाल शहर के अगल-बगल की थी, वे भी यहाँ आती थीं।

मुझे लगा कि यह तो सबसे अच्छा केंद्र है। यहाँ पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। सबसे बड़ी बात यह थी कि महिलाएँ बहुत निश्चिन्त होकर अपने बेटी और बहू को यहाँ भेजती थीं। उनको लगता था कि उनकी लड़कियाँ यहाँ सर्वाधिक सुरक्षित हैं। संचालक महिला का समर्पण भाव और निर्लोभ होकर कुछ कर गुजरने की भावना इस केंद्र के प्रति लोगों में बढ़ते विश्वास के कारण थे।

मैंने सभी महिलाओं के अनेक समूह बनाकर उनसे वार्ता किया। उनकी समस्याएँ सुनीं। अपनी समस्याओं का वे कैसा समाधान चाहती हैं, इस पर उनके विचार सुने। सभी योजनाओं के लागत मूल्य का अनुमान लगाया। बहुत कुछ सीखने के लिए मिल रहा था। सात दिन कैसे बीत गया, पता ही नहीं चला। सभी महिलाएँ मुझसे अपनी बातें खुलकर कहने लगी। उनको एकाएक ऐसा लगने लगा कि कोई है जो उनकी बात को गम्भीरता से सुनता है। उस पर कुछ करना भी चाहता है।

मेरे दिल्ली वापस आने से दो दिन पहले सायंकाल तीन लड़कियाँ मेरे पास आईं। मैंने उन्हें बैठने के लिए कहा। वे बैठ गयीं। लगभग दस मिनट तक कुछ नहीं बोलीं। कभी मेरी तरफ देखतीं, कभी सिर नीचे झुका कर धरती माता के मिट्टी के कण को निहारने लगतीं। उनके जीवन में उल्लास और दर्द के मिश्रित तरंग उत्पन्न हो रहे थे। कभी दर्द अपना उफान दिखाना चाहे, तो कभी उल्लास। वे सही अर्थ में दोनों की उभयवृत्तता में झूल रही थीं। कुछ तो इनकी समस्या अलग है, इतना तो मैं समझ गया था। मैंने सोचा, ये समय ले लें, अपनी बात को सहजता के साथ, मुझे समझने के लिए। यह भी सच है कि मौन होकर किसी के साथ कुछ पल रहने से आपको अधिक गंभीर बना देता है। आप उस मौन से उर्जा प्राप्त कर अधिक गंभीर बात आत्मविश्वास से कर सकते हैं। मैं चुपचाप उनके विचारों के तूफान का अवलोकन करता रहा।

15 मिनट के बाद उनमें से एक लड़की बोली: "मिश्रा सर, हम लोग आपसे बात करना चाहते हैं। हम लोगों का एक समूह है जिसमे 42 महिलाएं हैं। सभी की एक खास समस्या है। वे सभी आपसे बात करना चाहती हैं। लेकिन वहाँ केवल आप होंगे और वे महिलाएं होंगी। अगर आप अपनी सहमति प्रदान करेंगे तो इस मीटिंग का आयोजन केंद्र के बड़े हाल में हम लोग कल पांच बजे सायंकाल करेंगे।"

मुझे लग गया कि कुछ तो विवशता है इनकी। मैं भी कुछ मिनट के लिए मौन हो गया। सोचने लगा: "महिलाओं के विशाल दल के साथ अकेले में बात करना उचित रहेगा क्या?" फिर सोचा: "चलो कर लेते हैं।"

इधर दोनों लड़कियां मेरी स्वीकृति का इन्तजार करती रही। मौन भंग करते हुए मैं बोला: "ठीक है, कल ठीक पांच बजे सायंकाल हम लोग एक घंटा के लिए मिलते हैं।" वे लोग मुस्कान बिखेरते हुए धन्यवाद देकर चली गयी। जाते समय उनके पदचापों की गति, उनके उत्साह के साक्षी बन रहे थे।

खैर! रात भर मैं नही सो पाया। सदैव सोचता रहा: "आखिर ये महिलाएं कौन हैं? एक-दो तो हैं नहीं, इनकी संख्या 42 हैं और ये सभी मुझसे अकेले में क्यों मिलना चाहती हैं? मैं इतना भी सामर्थ्यवान तो नहीं कि इनके लिए कुछ कर पाऊं। आखिर इनकी समस्या क्या है?"

बहरहाल, दूसरे दिन निर्धारित समय से पांच मिनट पहले ही मैं उनसे मिलने के लिए तैयार हो गया था। ठीक पांच बजे वही दो लड़कियां मेरे पास आईं और बोलीं: "चलिए सर, हमारे समूह की महिलाओं से मिलने के लिए उस हॉल में?"

मैं बोला: "जी चलते हैं। मैं तो पांच मिनट से आपलोगों का इन्तजार कर रहा था।" यह कहते हुए मैं उनके साथ प्रथम तल पर बने उस विशाल कक्ष की ओर चल पड़ा। कक्ष में कोई भी नहीं था। करीब पचास कुर्सी लगा हुआ था। मुझे बीच की कुर्सी पर बैठने के लिए निर्देश दिया गया। मैं बैठ गया। अब रूम को बंद कर दिया गया। सभी लाइटें बंद कर दी गईं। रूम में पूरा अंधकार था। मैं कौतुहल की दृष्टि से सभी कुछ देखता रहा। कुछ ही क्षणों में, मुझे अनेक पदचापों का अनुभव हुआ। अँधेरा अभी भी छाया हुआ था। इतना तो स्पष्ट था कि सभी कुर्सियों पर महिलाएँ आकर बैठ रही थी। शायद उनको निर्देश था कि वे किसी तरह की आवाज न

निकालें। पांच मिनट के अन्दर फिर से सभी बल्वों को जला दिया गया। अब मैंने देखा कि 42 महिलाएँ कुर्सियों पर बैठी हुई हैं। सभी अपने-अपने मुंह को एक ओढ़नी से ढकी हुई थीं।

सबने एक साथ खड़े होकर मेरा अभिवादन किया। उनमें अनेक महिलायेँ ऐसी भी थीं, जो मेरे साथ ना तो हिंदी में और न ही अंग्रेजी भाषा में वार्तालाप कर सकती थीं। हाँ, अन्य लड़कियाँ उनके और मेरे बीच, दुभाषिये का कार्य कुशलतापूर्वक निभाने लगीं। अब एक महिला उठी और अपने बुर्के को उठाते हुए सभी महिलाओं को पर्दा उठाने का निर्देश दिया। उसके निर्देश मिलते ही सभी महिलाओं ने अपने-अपने मुंह पर से पर्दा उठा लिया। वह महिला तब तक खड़ी रही। फिर बोली: "सर, हम लोग आपका पुनः स्वागत करते हैं। आपको यह बताना चाहती हूँ कि हम सभी महिलाएँ HIV पॉजिटिव हैं अर्थात सेक्सुअली ट्रांसमिटेड डिजीज के मरीज हैं। अधिकांश केस में, गलती महिलाओं की नहीं है। हमारे पति इस बीमारी को बाहर से लाकर हमें संक्रमित करते हैं। जो भी हो, अब तो हम सभी इसके कुचक्र में फँस चुके हैं। हम लोग अभी भी अपना जीवन जी रहे हैं। हमें अपने से अधिक बच्चों की चिंता है। हम मरने से पहले जीना चाहते हैं। अपने बच्चों के बेहतर जीवन जीने के लिए जीना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे हमारे इस दुनिया से चले जाने के बाद सड़कों पर भीख न मांगें। बाज़ार में पॉकेटमारी न करें। वे सभ्य नागरिक बनें। पढ़ें-लिखें। उन्हें आर्थिक विपन्नता का भार न झेलना पड़े।" इतना कहकर वो महिला बैठ गयी।

अब दूसरी महिला खड़ी हुई। वह बोली: "सर, हमने सभी को आपके बारे में बता दिया है। फिर भी मैं चाहती हूँ कि अब एक-एक

महिला अपना अति संक्षिप्त परिचय आपको दे। अंत में, आप स्वयं इनको अपने बारे में बता दें।"

मैंने सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी।

अब सभी महिला अपना परिचय देने लगी। लगभग एक घंटा परिचय में चला गया। सभी को उनके बारे में उनके मुंह से जानना अच्छा लग रहा था। बहुत कुछ समझ पा रहा था। नारी उत्थान के लिए लोग क्या कर रहे हैं, इसको समझ पा रहा था। कथनी और करनी के अंतर को देख पा रहा था। अंत में, अपना परिचय देते हुए मैंने उनसे कहा: "मेरा नाम कैलाश कुमार मिश्र है। मैं कुछ संस्थाओं के लिए कंसल्टेंसी करता हूँ। आपकी बात उन तक रखता हूँ। योजनाओं का प्रतिवेदन तैयार करता हूँ। उसको कैसे और कितना वे स्वीकार करते हैं यह उन पर, उनकी आर्थिक स्थिति, उदेश्य आदि पर निर्भर करता है।"

एक महिला उठी और बोलने लगी: "सर, हम लोगों को दवाई एवं अन्य सुविधाएँ किसी-न-किसी तरह से सरकारी संस्थाओं से मिल जाती हैं। हम लोग चाहते हैं कि हम सभी 42 महिलायें मिलकर लगभग 9 तरह के लघु एवं कुटीर उद्योग का संचालन अलग-अलग गांवों में करें। हमने डिटर्जेंट, चप्पल, बिस्कुट्स, स्थानीय खिलौने, बेकरी, जनरल स्टोर आदि के लिए परियोजना का निर्माण भी कर लिया है। हम लोगों का अपना स्वयं सहायता समूह भी है। हमारी समस्या अर्थ की है। हम आपसे निवेदन करते हैं कि आप संस्थाओं के बात करें एवं हमारी परियोजनाओं के लिए हमें बैंक के इंटरेस्ट पर मूलधन उपलब्ध करा दें। हम लोग धीरे-धीरे सभी कर्ज सूद के साथ वापस कर देंगे। अगर यह हो जायेगा तो

हम सभी चैन की जिन्दगी जीते हुए, चैन से मर सकेंगे।" इतना कहकर वह भद्र महिला बैठ गयी।

मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या बोलूं? हिम्मत बटोरते हुए मैं बोलने लगा: "मुझ पर विश्वास करने के लिए आप सभी का धन्यवाद। जैसाकि मैंने अपने इंट्रोडक्शन में बता दिया है, मैं निर्णय लेने वाला अधिकारी नहीं हूँ। आप सबों की परियोजनाएँ मुझे बेहद प्रमाणिक लग रहे हैं। मै एक काम कर सकता हूँ कि इन डाक्यूमेंट्स को अपने साथ रख लूँ। इस संस्था एवं अन्य संस्थाओं के निर्णय लेने वाले अधिकारियों से बात करूँगा। अगर उन लोगों ने किसी तरह का इंटरेस्ट दिखाया, तो उन्हें लेकर आपके पास आऊंगा।"

मेरे इतना कहने पर सभी महिलाओं ने अपनी फोटो, पता और मोबाइल नंबर मुझे दे दीं। मैंने उन्हें फिर आश्वासन दिया: "आप लोगों की फोटो, मोबाइल नंबर और पता, मैं किसी को तब तक नहीं दूंगा, जब तक वे आपके प्रोजेक्ट को स्वीकार न कर लें।"

इसके बाद हम लोग अनेक तरह की बातें करते रहे। उस समूह में मैतेई, अनेक आदिवासी समूह की महिलाएं भी थीं। किसी की उम्र 35 से अधिक नहीं था। सभी सुंदर थी। आशावान थीं। एक-आध को छोड़कर सभी के बाल-बच्चे थे। कितनी महिलायें ऐसी भी थीं, जिनके पति को यह बीमारी है। उन्हीं से इनको हो गया है। पति अभी भी उनके साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करते हैं। एक तो इस अवस्था में भी गर्भवती थी। राम ही जाने, क्या होगा उनका!

अंत में, मैंने उन सभी को अगले दिन के भोजन के लिए इसी स्थान पर निमंत्रित किया। वे सभी तैयार हो गयीं।

मणिपुर से दिल्ली आने पर मैंने अपने इंटरनेशनल एनजीओ एवं अनेक संगठनों से बात किया। सभी बात बनाते रहे। किसी ने इनकी समस्या को सुलझाने का जिम्मा नहीं लिया। लगभग सारे एनजीओ ऐसे ही रिपोर्टों में चमकते रहते हैं। आजकल रंगीन, आंकड़ों से भरे, सिंगल स्टोरी से भरे रिपोर्ट पढ़ने को मिलते रहते हैं। लोग फोटोबाज बनते जा रहे हैं। ग्रासरूट की कौन सुनता है! इट हेप्पेंस ओनली इन इंडिया!

12

पूर्वोत्तरी – स्पिरिट ऑफ नार्थ-ईस्ट

— भाग 1 —

अनुभव अनंत है। सुकरात महोदय कहते थे लिखकर आप किसी के बारे में संशय ही उत्पन्न करते हो। लिखने का मतलब पूरे अनुभव को बौना करना है। आप जो देखते हो उसका मुश्किल से दस से बारह फ़ीसदी लिख पाते हो। फिर क्यों लिखना? एक मित्र पूछ रहे थे, "कैलाश भईया, आप पूर्वोत्तर भारत के बारे में लिख रहे हो। अच्छा लग रहा है। एक प्रश्न है। क्या उनमें कहीं कोई नकारात्मक चीज नही हैं? या फिर आप लिखना नहीं चाहते?"

मैं इनको क्या बताऊं। उनके सकारात्मक पक्ष का एक प्रतिशत हिस्सा भी अभी नहीं लिख पाया हूँ तो नकारात्मक पक्ष पर क्या लिखूं। चंचल मन धैर्य रखो। मतलब लिखना भी सार्थक क्रिया है। क्यों? इसलिए कि लोगों के पास एक प्रतिशत जानकारी नहीं हैं। जब आपके घर की अन्न की कोठी खाली है तब आपको यह नहीं सोचना है कि किस अनाज का भण्डारण करूं। जो मिले रखते जाइए। यहां यही अवस्था है।

लगातार चार साल से कार्य करते जा रहे थे। पुराने ज्वाइंट सेक्रेटरी जा चुके थे। एक विक्षिप्त मानसिकता वाली ज्वाइंट सेक्रेटरी आ चुकी थी। वो हर चीज में नुक्स निकालती थी। स्वाभाविक था

कि डॉ टीना ने उनसे दोस्ती बना लिया था। मेरे बारे में जितना अधिक हो सकता था, उनको बरगला कर चली आती थीं। सौभाग्य से, मेंबर सेक्रेट्री नहीं बदले थे। ज्वाइंट सेक्रेटरी को जब मन करे, मुझे बुला लेती थी और अपमानित करने लगती थी। एक बात पूछती और फिर स्वयं उस पर अपना उत्तर गढ़ती। बोलतीं: "तुम लोग लकड़ी, बाँस, बेंत, कद्दू के समान लाकर, यहां कबाड़ जमा कर रहे हो।"

मुझे पहली बार लगा कि पूरे मेहनत पर वे पानी डाल रही हैं। उत्तर-पूर्व भारत में महल एवं अन्य वस्तु तो मिलेंगे नहीं। बेंत, लकड़ी, बाँस, हड्डी आदि ही उनका जीवन है। उनके शॉल को देखकर आप अंदाज लगा सकते हैं कि वे कितने कलात्मक हैं। उनको अपने परिवेश और संस्कृति से कितना प्यार है, यह सामान्य जन जो उनको जानता नहीं कैसे जानेंगे! ऊपर से जितने ऑब्जेक्ट खरीदे गए, सभी उन कलाकारों से सीधे लिए गए थे। उन पर कैप्शन तैयार किए जा रहे थे। उनको राज्य, क्षेत्र, आदिवासी समुदाय, स्त्री, पुरुष आदि के आधार पर सजाए जा रहे थे। वे ऑब्जेक्ट्स हमारे लिखित दस्तावेज के जीवंत प्रमाण थे। उनको लाने के लिए अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा था। लेकिन ये लोग क्या जाने! हमारी समस्या यह है कि हम निरक्षर को मूर्ख मान लेते हैं। सच तो यह है कि साक्षर लोग अधिक मूर्ख होते हैं। वे अपनी वर्णमाला और अपनी संस्कृति और संस्कार से समस्त संसार को देखते हैं। किसी से समझना नहीं चाहते। जो उनके जैसा नहीं है, वह मूर्ख है, अविकसित है, असभ्य है। हमारी नयी ज्वाइंट सेक्रेटरी वैसी ही थी और उनके हाँ में हाँ मिलने वाली थी, विद्वानों

की लेडी विभीषण डॉ टीना। डॉ टीना अब विभागाध्यक्ष भी बन चुकी थी। तेवर दिखाना तो कोई उनसे सीखे।

एक दिन डॉ चक्रवर्ती मुझसे कहने लगे: ज्वाइंट सेक्रेटरी और डॉ टीना तुम लोगों को काम नहीं करने देना चाहती हैं। रोज, मेरे पास तुम्हारे शिकायत का पुलिंदा लेकर पहुँच जाती हैं। मैंने तो ज्वाइंट सेक्रेटरी से इतना तक कह दिया है कि उसको परेशान मत करो। बहुत अच्छा काम कर रहा है। पूरे उत्तर-पूर्व भारत के लोगों, संस्थाओं, कलाकारों, विद्वानों आदि के साथ वह सदैव लगा रहता है। सभी उसका सम्मान करते हैं। दुर्गम से दुर्गम स्थानों पर भी जाने से नहीं घबराता। लेकिन, मेरे दलीलों का उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। डॉ टीना उसका ब्रेनवाश करती रहती है।"

मैंने उत्तर दिया: "ठीक है सर, मैं उत्तर-पूर्व की जिम्मेवारी से अपने आपको मुक्त कर लेता हूँ"। हमेशा की तरह डॉ त्रिवेणी इस बार भी मेरा साथ देते हुए बोली: "ठीक है सर, मैं भी उत्तर-पूर्व भारत के क्रियाकलाप से डॉ कैलाश के साथ ही अपने को अलग करती हूँ।" डॉ त्रिवेणी का ऐसा कहना मुझे एक अपूर्व आत्मबल प्रदान कर रहा था।

डॉ चक्रवर्ती बहुत गंभीर प्रशासक और विद्वान थे। उन्होंने सहजता से उत्तर दिया: "आप दोनों चिंता मत करो। जीवन में ऐसे नकारात्मक लोग मिलते रहते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि आप वह काम करना ही छोड़ दें। डॉ टीना यही तो चाहती हैं कि आप लोग तंग आकर यह काम छोड़ दो। आप एक काम करो। अभी तक जितना काम किये हो, उसको शोकेसिंग करो। सभी ऑब्जेक्ट्स की प्रदर्शनी करो। 10 दिन का एक मेगा इवेंट दिल्ली में आयोजित

करो, जिसमें उत्तर-पूर्व भारत के हरेक राज्यों का प्रातिनिधित्व निर्धारित करो। एक विस्तृत योजना तैयार करो। इसमें डॉ टीना और ज्वाइंट सेक्रेटरी को संलग्न करो। उनकी भूमिका निश्चित करो। एकाउंट्स से लेकर, सभी विभाग के लोगों को, किसी न किसी कार्य में लगा दो। जाओ, पहले एक कार्यक्रम की रुपरेखा तैयार करो। उसका बजट तैयार करो।"

मुझे लगा, डॉ चक्रवर्ती एक बार पुनः मुझे फंसा रहे हैं। लेकिन, दूसरा कोई उपाय भी नहीं था मेरे पास। मैं डॉ त्रिवेणी के साथ वापस आ गया। तीन दिन तक लगातार लोगों से बात करने के बाद यह निर्णय लिया गया कि हम लोग 10 दिन का कार्यक्रम बनायेंगे। नाम होगा: "पूर्वोत्तरी – The Spirit of North-East"। इसमें प्रथम और अंतिम दिन समवेत कार्यक्रम होंगे और आठ दिन तक हरेक दिन एक राज्य को समर्पित होगा – असम, मणिपुर, मिज़ोरम, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मेघालय, त्रिपुरा और सिक्किम। निर्णय यह लिया गया कि दिन में सेमिनार, कलाकृतियों और अन्य सभी एकत्रित ऑब्जेक्ट्स की प्रदर्शनी, फिल्म शोज, नाटक आदि का आयोजन और रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम अर्थात् नित्य और संगीत। यह भी निर्णय लिया गया कि हम लोगों ने अभी तक जितने फोटोग्राफ अपने कैमरे में कैद किये हैं, उनको भी प्रदर्शनी में दिखाया जायेगा। कलाकेन्द्र के 23 एकड़ के कैंपस को मिनिएचर पूर्वोत्तर भारत के रूप में बदल दिया जायेगा। संस्थान का एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं होगा, जो इस कार्यक्रम में किसी न किसी रूप में संलग्न न हो।

मुझे लगा कि गौतम शर्मा एवं प्रत्येक राज्य से कुछ प्रतिनिधियों को बुलाकर कार्यकर्म का ब्लू प्रिंट बना लें। सभी राज्यों के लोग, राज्य के विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर, कलाकारों के प्रतिनिधि, जनजातीय प्रतिनिधि, आदि को बुलाकर एक तीन दिन का कार्यशाला का आयोजन किया गया। अब पूरा संस्थान इसमें संलग्न था। हमें यह चिंता नहीं थी कि अतिथियों के आने-जाने और रहने की व्यवस्था कौन करेगा? अनेक समिति और उपसमिति बना दिए गए थे। अंत में, ज्वाइंट सेक्रेटरी ने मुझे ही उसका कोऑर्डिनेटर बना दिया। इतनी समितियां होने के बाद भी लोग मेरे पास आते थे। मैं दो रिसर्च स्कॉलर के साथ, एक कमरे से सारा कार्य करता रहा। इस बीच भी, डॉ टीना पूरे मन से मुझे प्रताड़ित करती रही। प्लान बनाती रही कि किसी तरह से पूरा कार्यक्रम फ्लॉप हो जाए और उसकी जिम्मेवारी मेरे सिर पर मढ़ दिया जाए।

बहरहाल, होना कुछ और ही था। बैनर, पोस्टर, एक-एक कार्यक्रम की रुपरेखा, हम लोग कभी-कभी तो दिन क्या देर रात तक बनाते रहे। लोगों को किस तरह का भोजन देना है, कितने डारमेट्री, कितने होटल के रूम बुक करने हैं। रेल और हवाई जहाज में कैसे टिकट्स कन्फर्म करवाने हैं। किस तरह से पूर्वोत्तर भारत की सभी जाति, जनजाति, समुदाय का प्रतिनिधित्व हो सके, इसका प्लानिंग, डॉक्टर दल की व्यवस्था, पुलिस का परमिशन, एम्बुलेंस की व्यवस्था, मीडिया रिपोर्टिंग और टीम मैनेजमेंट, सभी कुछ पर एक साथ काम चल रहा था। जीवन में पहली बार 23 एकड़ के कैंपस में पत्ते-पत्ते को गतिमान देखा था। दिन-रात को हम मानो भूल ही गए थे।

सेमिनार के लिए, थीम का निर्धारण, उसके लिए चेयरपर्सन, वक्ता का चयन, उनसे शोध पेपर लिखने का आग्रह, समय से उनका पेपर, बायोडाटा, उनकी छवि आ जाये, इसका निर्धारण, कलाकारों का चयन एवं उन्हें पूर्व से ही जानकारी भेजना, काम का अंत ही नहीं था। ऊपर से, अगर किसी भी समिति का कोई व्यक्ति कहीं फंसता, तो सीधे मेरे पास आता या फोन करता। लेकिन, इस तमाम प्रक्रिया में डॉ चक्रवर्ती की भूमिका का जितना वर्णन करूँ, कम होगा। चक्रवर्ती महोदय, सतत हम लोगों के लिए उपलब्ध रहते। भाषा प्रवीण भी थे वे। हमारे लिखे हरेक ड्राफ्ट को गम्भीरता से पढ़ते। हमें समझाते। लगता था जैसे कोई हाई स्कूल का अंग्रेजी का शिक्षक हमें व्याकरण सिखा रहा है। उनका साहचर्य अनंत उर्जा प्रदान करने का तंत्र ही तो था।

कभी-कभी मन करे, "क्यों ले लिया इस झंझट को मोल! टाल देना था डॉ चक्रवर्ती के विचार को!" फिर सोचता: "यही तो है जीवन की चुनौती। अगर सफल हो गए तो एक इतिहास तैयार हो जायेगा। कभी-कभी पिताजी से बात कर लेता था। कार्य तेजी से चल रहा था।

इसी बीच, एकाएक पिताजी का फोन आया। फोन पर रोने लगे। मैंने पूछा – क्या हुआ: "बोले, अब नहीं बचूंगा।" इतना कहकर पिताजी ने फोन माँ को पकड़ा दिया। माँ कहने लगी: "समझ में नहीं आ रहा है, क्या हो गया है। तुम्हारे भैया-भाभी भी यहाँ नहीं हैं। पिताजी को देखना है, तो जल्द आ जाओ।"

दूसरे दिन, सुबह मैं हवाई जहाज से पटना चला गया। मुझसे बड़ी बहन धनबाद से पटना आ चुकी थी, पिताजी दरभंगा के एक प्राइवेट हॉस्पिटल में भर्ती थे। वहाँ जाने पर पता चला कि उनको

हार्ट अटैक हुआ था। स्थिति क्रिटिकल है। जो भी हो, हम यह आस लगाये पिताजी का इलाज कराते रहे कि वे ठीक हो जायेंगे। लेकिन होना कुछ और ही था। चार दिन के बाद, वहाँ के डॉक्टरों ने जवाब दे दिया। हम लोग दरभंगा से पिताजी को लेकर पटना के लिए चल पड़े। हाजीपुर के पास पिताजी चल बसे। वापस घर आ गये। होनी को कौन टाल सकता था।

जब डॉ चक्रवर्ती को यह पता चला, तो उन्होंने पूर्वोत्तरी के कार्यक्रम को 2 महीने आगे बढ़ा दिया। पिताजी के श्राद्ध कर्म के बाद मैं दिल्ली वापस आया। डॉ चक्रवर्ती बोले: "यह जीवन की सच्चाई है। स्वीकार करो। पूर्वोत्तरी तुम्हें ही करना होगा। मैंने इसे दो महीने आगे कर दिया है। पांच दिन और आराम कर लो, उसके बाद काम में लग जाओ।"

मुझे एक दिन अँधेरे में ऐसा लगा, जैसे पिताजी मेरे साथ चल रहे हों। रात में अनेक बार पिताजी सपने में आये। कहने लगे: "माता-पिता मरते नही हैं। केवल स्थूल से सूक्ष्म में बदल जाते हैं। मैं तुम्हारे साथ हूँ। अपना काम शुरू करो। जीवन का यही विधान है।"

मैंने मान लिया कि पिताजी सदैव साथ हैं। उनकी आज्ञा की अवहेलना उचित नहीं है मेरे लिए। यही सोचकर मैं पांच दिन क्या, तीसरे दिन ही डॉ चक्रवर्ती से मिला और उन्हें बता दिया कि अगले दिन से काम पर लग जाऊंगा। मैं अब पुनः अपने मिशन पर एक योद्धा की तरह काम करने लगा था।

कार्यक्रम निर्धारित तिथि को आरंभ हुआ। सभी कुछ उत्तम। किसी भी व्यवस्था में कोई कमी नहीं। अलग-अलग मीडिया को भी

आमंत्रित किया गया था। दिन का कार्यक्रम तो उत्तम रहा। रात में सांस्कृतिक कार्यक्रम होने थे। वे भी प्रारम्भ हो चुके थे।

एक खास प्रदेश का कार्यक्रम चल रहा था। एकाएक एक कलाकार मेरे पास आया। बोला – "आप स्टेज के पीछे आओ। जरुरी काम है।"

मैं स्टेज के पीछे भागा। पता चला एक कलाकार का हार्ट अटैक हो चुका है। वह बेहोश है। संयोग से उसकी पत्नी और बेटा भी यहां साथ आए थे। मैं उनको लेकर कैंप में ही बैठे आपातकालीन डॉक्टर के पास ले गया। डॉक्टर ने उस कलाकार को मृत घोषित कर दिया। अब क्या हो!

मुझे लगा: "अगर मीडिया के लोगों को इसकी जानकारी हो गयी, तो सारे मेहनत पर पानी फिर जाएगा: "सुबह के सभी अखबारों का ब्रेकिंग न्यूज़ होगा: "कला केन्द्र में कलाकार की मौत"! मृतक के परिवार वाले बता रहे थे कि कलाकार को पहले भी हार्ट अटैक आ चुका है। वे लोग दुखी तो बहुत थे, लेकिन मृत्यु के लिए हमें अथवा किसी भी व्यक्ति को दोषी नहीं मान रहे थे। इधर स्टेज पर कार्यक्रम चलता रहा। मृतक के लाश को हमने एक जगह रख दिया। जब कार्यक्रम समाप्त हो गया, तब इसकी जानकारी डॉ चक्रवर्ती को दिया गया। उसका डेथ सर्टिफिकेट लिया गया और लाश को उसके परिवार के लोगों के साथ उनके गृह राज्य भेज दिया गया। इस घटना की सूचना किसी को भी नहीं दी गई। केवल तीन-चार लोगों को ही इसकी जानकारी थी। मेरा प्राण बच चुका था।

भगवान से प्रार्थना करता रहा: हे इश्वर, जो हुआ सो हो गया। आगे इज्जत रखना प्रभु!

— भाग 2 —

"कलाकेंद्र में किसी महान कार्यक्रम के पहले दिन कलाकार की मौत" यह एक ऐसा न्यूज होता, जो सभी के मेहनत पर पानी डाल सकता था। लेकिन भला हो दिवंगत कलाकार के परिवार के सदस्यों का और हमारी टीम भावना का कि हम बच गए।

इस दुर्घटना ने एक बार पुनः उत्तरपूर्व भारत के लोगों के बारे में मेरे मन में असीम श्रद्धा और प्रेम उत्पन्न कर दिया। लग रहा था कितनी सहजता से मृतक कलाकार की पत्नी और बेटा हमें बता रहे थे कि उनको पहले से दिल की बीमारी थी। मृत्यु दुखद है लेकिन इस बीमारी में यह अनहोनी घटना नहीं है। न कोई शिकवा न कोई शिकायत। हमने जो किया उससे वे संतुष्ट थे। यह जरूर कह रहे थे कि जब भी कोई कार्यक्रम करें, उनके लिए सोचें जरूर। अगर ईमानदारी से सोचें तो यह तो नितांत मानवीय गुण है। इसमें कहीं से भी कोई बुराई नहीं है। कलाकारों का जीवन तो ऐसे ही चलता है। हमारे देश में कलाकार के बारे में सोचता कौन है? लोक कलाकार तो और भी हाशिये पर चले गए हैं। किसी भी योजना, सोच, चिंतन, विकास के फॉर्मेट का ये हिस्सा नही होते। कौन सोचता है इनके बारे में? न सत्ता पक्ष न विपक्ष। बड़े ओहदे के अधिकारी तो इन्हें दोयम दर्ज़े का मनुष्य समझते हैं। लोक-कला से लोक कलाकार उदासीन होते जा रहे हैं। 100 में से 80 लोक कलाकार अपने बच्चों को अपनी लोक-कला नहीं सिखाते। उन्हें डर है कि इनके बच्चे इन कलाओं के बल पर दो जून की रोटी भी ढंग से नहीं खा सकेंगे।

पहले दिन की दुर्घटना से यह ज्ञान तो मिल ही चुका था कि अब मीडिया से बहुत दोस्ती नहीं रखनी है। अगर एक गलती के कारण ब्रेकिंग न्यूज़ में हमारी असावधानी को असफ़लता और धन का दुरूपयोग बता दिया तो फिर हम सिर ही धुनते रह जायेंगे। पत्रकारिता के 95 फ़ीसदी लोग तो Man biting a Dog (मनुष्य ने कुत्ते को काट लिया) को ही ब्रेकिंग न्यूज बनाते हैं। शायद हम पाठक और श्रोता भी इसके लिए दोषी हैं। एक पत्रकारिता से संबंधित घटना याद कर पा रहा हूँ। उसका जिक्र यहां जरूरी है। मेरी एक दोस्त थी। वह एक अंग्रेजी अखबार पायोनियर के लिए काम करती थी। मुझे हरेक सप्ताह एक लेख कला संस्कृति एवं कला संस्थानों पर केंद्रित करते हुए लगभग 1200 शब्द में लिखने के लिए बोलती थी। मैने लिखना शुरू किया। अजंता पर लिखा, एलोरा के कैलाश गुफा पर लिखा, अनेक लोक कलाओं पर लिखा, वह नियमित मेरे आलेख छापती रही। एक दिन बोली: “यार के के, तुम कला संस्थानों पर भी सब कुछ अच्छा है, ऐसा लिखते हो। तुम्हारे लिए सही होगा, लेकिन हमारे लिए यह सेंसेशन नहीं बनता। ज्ञान ब्रेकिंग न्यूज नहीं बन सकता। इसको स्कूल और कॉलेज के सिलेबस में डालकर पढ़ाया जा सकता है। मैं तो कहूंगी कि संस्थानों की कमजोर कड़ी या कुछ और लिखो। रूटीन और कला सौंदर्य पर एक आध पैराग्राफ लिखकर आगे निकल जाओ।”

मैं बोला: "यह मेरे से नहीं होगा। में सौंदर्य पक्ष पर ही लिखूंगा। कला के प्रमाण, इतिहास, विन्यास, रंग, परफॉर्मेटिव परम्परा, कला और कलाकार पर लिखूंगा, उनके उद्भव और विकास पर लिखूंगा। नैराश्य अथवा नकारात्मक पक्ष पर नहीं लिखूंगा। यह

काम शोधकर्मी अथवा संस्कृतिकर्मी का नहीं है। यह काम किसी पत्रकार से करवा लो आप। मुझे मुक्त कर दो इस जिम्मेदारी से।" इसके बाद एक आध अंक के लिए लिखकर मैंने पायोनियर अखबार के लिए लिखना छोड़ दिया।

प्रसंग अनेक हैं। किसको लिखूं किसको छोड़ूं, यह निर्णय सहज नहीं है। एक प्रसंग कलाकारों से संबंधित है, उसका जिक्र करना अनिवार्य है। चलिए, इस घटना को याद कर लें। एक बार, एक एनीमेशन के वर्कशॉप के लिए मैंने आदिवासी और लोक कलाकारों को बुलाया था। एनीमेशन के प्रशिक्षण के लिए नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ डिजाईन (NID) के एसोसिएट प्रोफेसर के साथ उनको भी हवाई जहाज से आने के लिए कह दिया था। मेरे पर तो एकाउंट्स से लेकर सभी अधिकारियों ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। उनके ऑब्जेक्शन का उत्तर देते-देते मैं पागल हो गया। एक राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त लोक कलाकार को ये लोग एक एसोसिएट प्रोफेसर के समकक्ष नहीं मानते थे। अपनी अज्ञानता पर इतना घमंड तो कहीं देखा नहीं। खैर बहुत ही मुश्किल से वे माने और इस हिदायत के साथ उस फाइल को स्वीकार किया कि मैं भविष्य में इस तरह की गलती न करूँ। क्या करता, गलती मान लिया – मरता क्या नहीं करता।

अपनी गति में फिर हम सभी गतिमान हो गये थे। दस दिन तक ना खाने का समय, न अपने बारे में सोचने का समय। हम 24 X 7 व्यस्त रहते थे। लेकिन काम सही चल रहा था। विद्वान, कलाकार, तक्नीशियन, सभी अपनी जिम्मेवारी समझ रहे थे। व्यस्तता में परमानन्द की अनुभूति कर रहा था। कार्य की सफलता मानो खाली पेट में भी अनेक भोज्य विधानों का रस दे रहा था।

वाह, क्या दिन थे। एक दिन, जब असम के माजुली द्वीप के सत्रीया नृत्य के लोग भाव नृत्य का कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहे थे, तो ऐसा लग रहा था कि कितने अभागे हैं हम लोग जो उत्तर-पूर्व भारत के इस वैष्णव कला से अनभिज्ञ हैं, जिसका प्रारम्भ चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी में श्रीमंत शंकरदेव ने किया था। बाद में, इस परम्परा को श्रीमंत शंकरदेव के शिष्य, श्रीमंत माधवदेव ने आगे बढाया। कहता चलूँ की सत्रीया नृत्य पहले केवल पुरुषों द्वारा किया जाता था। अब यद्यपि महिलायें भी इस नृत्य को सीखने लगीं हैं और इसका प्रदर्शन भी करने लगी हैं। सत्राधिकारियों के पाण्डुलिपि और उनके ज्ञान एवं भक्ति पर हम लोगों ने दिन में ही एक दिवसी संगोष्ठी के साथ-साथ परफॉरमेंस का भी आयोजन किया था। पूरा माहौल मानो कृष्णमय हो गया था – "हरे कृष्ण गोबिंद मोहन मुरारे। यही नाम हरदम हो मुख में हमारे।"

इतना ही नहीं, उत्तर-पूर्व भारत के लोग अनेक तरह के शाकाहारी और मांसाहारी व्यंजनों का स्टाल लगाये हुए थे। इसमें सुबह 9 बजे से लेकर रात के 12 बजे तक कोई भी आकर अपने मन-पसंद का भोजन खरीदकर खा सकता था। हमने सभी उत्तर-पूर्वी राज्यों के मुख्यमंत्री एवं राज्यपाल को निमंत्रित किया था। इतना ही नहीं, उत्तर-पूर्व भारत के सांसद, मिनिस्टर, राज्यों के रेजिडेंट कमिश्नर, सभी आमंत्रित थे। ख़ुशी इस बात की थी कि सभी एक-एक कर अलग-अलग दिन और कार्यक्रमों में आ भी रहे थे। दुसरे राज्यों के सांसद, अधिकारी को भी हम बुला रहे थे। हमने दिल्ली के अनेक विद्यालयों से एक समझौता कर लिया था कि वे अपने बच्चों को पूर्वोत्तरी की प्रदर्शनी, फिल्म शोज, कार्यक्रम आदि

देखने के लिए भेजेंगे। कुछ कॉलेज की छात्र-छात्राएं भी इसमें भाग ले रहे थे। अनेक देशों के राजनयिक एवं अन्य अधिकारियों को आमंत्रित किया गया था। पूरा कैंपस दुल्हन की तरह सजा हुआ था। परिधान, खान-पान, नृत्य, गीत, फोटोग्राफी, गृह आर्किटेक्चर, जड़ी-बूटी, प्राकृतिक फल, फूल, सब्जी, कंद, मूल, पेय पदार्थ, दैनिक व्यवहार के उपकरण, वाद्ययंत्र, गहने, पगड़ी, और न जाने क्या-क्या। जो भी खोजिये, मिलेगा। इन सभी चीजों की व्यवस्था अगर कोई कर रहा था तो वह था गौतम शर्मा। इसका मतलब यह नहीं कि और राज्य के लोग कार्य नहीं कर रहे थे। गौतम शर्मा उन सभी के साथ एक लिंक का कार्य कर रहे थे।

शाम के समय नागाओं का युद्ध नृत्य और गीत, उनके पारंपरिक खेल का प्रदर्शन, मणिपुर का मार्शल नृत्य और अन्य करतब, अनेक आदिवासियों के प्रेमगीत के साथ सौन्दर्य से लबालब गान एवं नृत्य, लड़के और लड़कियों का समवेत नृत्य और गान, सभी कुछ मनमोहक थे। अरुणाचल प्रदेश के तवांग क्षेत्र के मोनपा आदिवासी के मुखौटा नृत्य, सिक्किम के भूटिया, लेपचा, लिम्बू एवं अन्य समुदाय के नृत्य, गीत, अनेक वस्त्र और गहनों से सुसज्जित महिला पुरुष का संस्कृत-प्रेम और न जाने क्या-क्या सब कुछ विलक्षण था। अलग-अलग तरह के एवं कुछ अजूबे वाद्ययंत्र, उनसे निकलते अपूर्व ध्वनि, कलाकारों का करतब, दर्शक और श्रोताओं के मध्य मधुर समन्वय, सब कुछ मंत्रमुग्ध करनेवाला था। लोग अर्थात् सामान्य दर्शक और श्रोता सब कुछ देखकर मंत्रमुग्ध थे। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि पूर्वोत्तर भारत के इस तरह के सम्पन्न सांस्कृतिक और प्राकृतिक सम्पदा से वे आज

तक अनभिज्ञ थे। सुबह-सुबह कलाकार वाद्ययंत्रों को उच्च, मध्यम और लघु ताल में बजाकर लोगों के कान में मानो मधुर रस घोलकर उठाते हों।

अनेक आदिवासी समुदाय के बुजुर्गों, पुरुष एवं महिलाओं को बुलाया गया था। वे लोग आपस में अपने झगड़े, जमीन का विवाद, लड़ाई-झगड़ा आदि का निराकरण कैसे करते हैं, अर्थात् कस्टमरी लॉ की क्या भूमिका है आदि पर उनसे उन्हें अलग-अलग समूह में बिठाकर उनके क्रिया-कलाप को डिजिटली डॉक्यूमेंट किया जा रहा था। लोगों के वाद्ययंत्रों को बनाने की कला, सिखाने का परंपरागत तरीका, अलग-अलग समुदाय के लोगों का भैषजीय ज्ञान, अलग-अलग देवताओं के बारे में विस्तृत जानकारी, प्रकृति के बारे में उनकी धारणा, महिला और पुरुष की भूमिका, लोक कथा, लोक गाथा, गीत, नृत्य, जादू, टोना, मेन्टल लेंडस्केपिंग और न जाने क्या-क्या।

उधर अलग-अलग बिंदु पर संगोष्ठी पर चर्चा किया जा रहा था। ताई अहोम, उनका ऐतिहासिक, प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक महत्व, दीमासा किंगडम की ऐतिहासिक विशेषताएं, इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स और पूर्वोत्तर भारत के निवासी, ट्राइबल आइडेंटिटी, प्रकृति के साथ संस्कृति और वहाँ के निवासियों का तारतम्य, बढ़ते समय के साथ परंपरागत कृषि, विशेषकर झूम कल्टीवेशन का आज के समय में महत्व एवं उसमें परिवर्तन, उत्तर-पूर्व की समस्याएँ एवं उसके निदान में स्थानीय नेता, युवक, महिला, विद्यार्थी एवं विद्वानों के साथ-साथ नीति-निर्धारकों की भूमिका, उत्तर-पूर्व भारत का इतिहास, पूरा इतिहास, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में उत्तर-पूर्व

भारत की भूमिका क्या कुछ नहीं थे। यह कार्यक्रम, एक फेस्टिवल नहीं अपितु मेगा-इवेंट था – न भूतो, न भविष्यति।

और, अभागा मैं! मुझे किसी भी कार्यक्रम को एक जगह बैठकर देखने का, सुनने का, निहारने का और उस पर सोचने का वक्त कहाँ मिल पाता था। मैं तो केवल यह सोचकर निश्चिन्त था कि सभी कार्यक्रम का व्यवस्थित ऑडियो-विजुअल रिकॉर्डिंग हो रहा है, मौका मिलने पर उनको एक-एक कर देख सकता हूँ।

कार्यक्रम का अंतिम दिन था। ज्वाइंट सेक्रेटरी मेरे पास आई। पीछे से मेरे पीठ पर हाथ रखी। लगा किसी आत्मीय व्यक्ति ने हाथ रख दिया है। पीछे मुड़कर देखा तो ज्वाइंट सेक्रेटरी थी। मैं एकाएक डर गया। लगा: "फिर डांटने आ गयी है। पता नहीं क्या-क्या कहेगी!" अभिवादन करते हुए बोला: "जी मैडम! बताएं क्या करना है। वह आत्मिक बनी रही। हँसती रही। फिर बोली: "बहुत अच्छा काम कर रहे हो। मुझे नहीं मालूम था कि तुम इतनी गम्भीरता और समर्पण से उत्तर-पूर्व भारत के लिए कार्य कर रहे हो। मुझे डॉ टीना ने गलत जानकारी दी थी। कोई बात नहीं। इस इवेंट की समाप्ति के बाद तुम मुझसे मिलो। मैं तुम्हारे साथ कुछ और महत्वपूर्ण कार्य करना चाहती हूँ।"

मुझे लग रहा था कि ये क्या हो रहा है। सच है या सपना देख रहा हूँ! लेकिन अधिक ख़ुशी व्यक्त करना उचित नहीं लगा। विनम्रता से बोल दिया: "जी मैडम, आप जो आज्ञा देंगी, करूँगा। इवेंट की समाप्ति के तुरत बाद, आपसे अपॉइंटमेंट लेकर मिलता हूँ।"

ज्वाइंट सेक्रेटरी बोली: "नहीं-नहीं कैलाश। तुमको अपॉइंटमेंट लेने की जरूरत नहीं है। ये लो मेरा मोबाइल नंबर। जब मन हो, फोन कर लो और आ जाओ।"

मुझे लगा, हे भगवान, यह क्या हो रहा है! बहरहाल, मैं वहाँ से कहीं और चला गया।

आज मेगा इवेंट का दसवां और अंतिम दिन था। सभी लोग मौजूद थे। दिन भर हम लोग व्यस्त रहे। शाम का कार्यक्रम शुरू हो चुका था। आज कपिला वात्स्यायन भी आई थीं। अनेक राज्यपाल और दो मुख्यमंत्री आये थे। मुझे डॉ चक्रवर्ती ने अपने पास बुलाकर यह निर्देश दे दिया था कि कहीं भी दर्शकों के साथ रहो। कार्यक्रम शुरू था। कार्यक्रम के बीच में मुझे स्टेज पर बुलाया गया। मैं इसके लिए तैयार नहीं था। मैं बोला: "मुझे नहीं कुछ बोलना है। कार्यक्रम को आगे बढ़ाइये।" डॉ चक्रवर्ती बोल पड़े: "जाओ बोलो। तुम्हें सोचने की क्या जरूरत है? तुम तो इस इवेंट के सूत्रधार हो। जाओ स्टेज पर जाते ही खुद ही समझ जाओगे, तुम्हें क्या बोलना है।"

अब मैं स्टेज को ओर चल पड़ा। मेरे स्टेज पर पहुँचते ही जितने भी पूर्वोत्तर भारत के कलाकार और अन्य लोग थे, सभी एक साथ बोल पड़े "मिश्रा सर!" बता नहीं सकता कि इन दो शब्दों में कितना मिठास था। फिर वे बहुत देर तक ताली बजाते रहे। मैं बोलने लगा। चन्द शब्द ही बोल पाया। क्या बोला मुझे नहीं पाता लेकिन इतना जरूर लग रहा था – आज मैं ऊपर, आस्मां नीचे!

13

संगाईप्रो – मणिपुर के काबुई नागा का विशिष्ट गाँव

जो बाहर से दिखता है कभी-कभी वैसा बिलकुल नहीं होता है। जब आप मणिपुर की राजधानी इम्फाल एयरपोर्ट से शहर की ओर चलेंगे तो तीन किलोमीटर पर एक शहरी गांव मिलेगा। इस गांव का नाम है संगाईप्रो। यह गांव अर्थात संगाईप्रो काबुई नागा का गांव है। इस गांव का बहुत प्राचीन इतिहास नहीं है। इसमें काबुई नागा के अनेक गोत्र के लोग रहते आ रहे हैं।

अगर आप इस गांव अर्थात संगाईप्रो जाएं और इनके बुजुर्गों से इत्मीनान से बातचीत करें, तो इस गांव और यहां के लोगों के बारे में विस्तार से बहुत कुछ समझ पाएंगे। कहते हैं कि अनेक पहाड़ी नागा (काबुई) गांव के पूर्वजों ने धान की खेती और बाजार से संपर्क साधने के लिए एक कैंप के रूप में इस गांव का निर्माण किया। मतलब मैदानी क्षेत्र में कैंप विलेज जहाँ धान की खेती सहजता से किया जा सकता था। धान की खेती के समय, वे लोग अपने-अपने परिवार से कुछ पुरुष और महिलाओं को यहां छोड़ जाते थे। वे लोग अगल-बगल के खेत में धान की खेती करते। खेत और फसल को जंगली जानवरों से रक्षा करते और जब धान घर आ जाता, तो उसको लेकर अपने-अपने मूल गांव में चले जाते। धान के साथ

मसाला, नमक एवं अन्य जरुरी सामान भी ले जाते थे। समय बदलता गया। समय स्थिर भी भला कब रहता है! धीरे-धीरे ईसाई मिशनरी के संपर्क में आकर इन लोगों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। इस गाँव में एक चर्च भी बना दिया गया। अब धीरे-धीरे जो लोग यहाँ थे, वे सभी यहीं रह गए। और जो कभी कैंप गाँव हुआ करता था वह एक स्थाई गाँव हो गया। इस गाँव में वैविध्य बढ़ गया। अब यह गाँव अनेक काबुई नागा का एक समेकित गाँव बन गया था। लोगों में प्रेम और भाईचारे का अद्भुत माहौल दिखने लगा। सभी लोग स्कूल जाने लगे। सभी लोग चर्च जाने लगे। अब ये ईसाई अधिक होते गए। परंपरागत नागा धर्म और संस्कार को भूलने लगे। खेती तो कर ही रहे थे। अपने-अपने पहाड़ी गांवों से अभी भी जुड़े थे। पहाड़ी गाँव के लोग भी ईसाई बन चुके थे। यहाँ शहर में इन्हें नौकरी भी मिलने लगी।

लेकिन सब कुछ अच्छा नहीं हुआ। इम्फाल शहर में ये लोग देशी छांग भूलकर विदेशी शराब पीने लगे। युवक अधिकांश टैक्सी आदि चलाते थे। ये लोग शराब की लत में डूबते चले गए। परिणाम भयावह होने लगा। 30 से 45 साल की अवस्था में लोग शराब के कारण आंत एवं अन्य बीमारियों से मरने लगे। महिलाएं विधवा होने लगी। बच्चे अनाथ होने लगे। मरने के पहले बीमार होकर इलाज करवाने में लोग पहले ही कर्ज में डूबने लगे। सर्वत्र हाहाकार होने लगा। गाँव धीरे-धीरे विधवाओं से भरने लगा। इसका समाधान होना जरुरी था, ये सभी समझ रहे थे। लेकिन कौन आगे आये? क्या समाधान हो?

संगाईप्रो गाँव के लोग विशेषकर महिलायें बहुत चिंतित थीं। उनका चिंतित होना लाज़िमी था। फ़िर एक विचार आया कि एक संस्था का निर्माण किया जाए। गाँव का हरेक घर उससे जुड़े। संस्था बन गयी। अब आगे क्या हो? हुआ एक पुस्तकालय बने। पुस्तकालय के लिए गाँव के लोगों ने एक जमीन का टुकड़ा खरीद लिया। कुछ दिन के बाद एक संस्था वहाँ आई। गाँव के लोगों ने संस्था के अधिकारियों से अपनी समस्या का बयान किया। संस्था और गाँव के लोग मिलकर पुस्तकालय का भवन बनाने लगे। हर घर से मदद आने लगी। जो महिलाएं नगद नहीं दे सकती थीं, वे प्रतिमाह एक या दो किलो चावल देती। उस चावल को बेचकर पैसा पुस्तकालय के निर्माण में लगा दिया जाता। इस तरह से देखते-देखते पुस्तकालय बनकर तैयार हो गया। पुस्तकालय में पुस्तक, डीवीडी, कंप्यूटर डाले गए। पुस्तक तो थे ही। स्कूल के पाठ्यक्रम के पुस्तकों को भी रखा गया। सभी लोगों को कुछ न कुछ पुस्तक लाने की जिम्मेदारी दी गयी। महिलाओं के लिए प्रशिक्षण केंद्र खोले गए। वहाँ उन्हें, सिलाई, कढाई, परम्परागत शाल बुनाई आदि के प्रशिक्षण दिए जाने लगे। उनके छोटे बच्चों के लिए एक चिल्ड्रेन एक्टिविटी केंद्र बनाया गया, जहाँ बच्चों के लिए खिलौने, साइकिल, टेलीविज़न आदि रखे रहते थे, जिससे जब उनकी माताएं प्रशिक्षण ले रही होती, तब बच्चे उन कार्यों में प्रसन्न रहें। इस तरह से, बच्चों का मानसिक विकास भी होने लगा। यह नूतन प्रयोग, उत्तम प्रयोग होने लगा। बुजुर्गों के लिए बाइबिल, अन्य धर्मग्रन्थ एवं नियमित दो अख़बार मँगाए जाने लगे, जिससे वे अपना समय व्यतीत कर सकें। स्कूल और कॉलेज में पढ़ रहे लड़के और

लड़कियों के लिए कंप्यूटर, इन्टरनेट की सुविधा, प्रतियोगिता की परीक्षा के लिए पुस्तक, गाइडबुक, ऑडियो विजुअल मैटेरियल्स आदि उपलब्ध कराये गए थे।

कुछ महिलाओं को फ़ूड प्रोसेसिंग का भी प्रशिक्षण भी दिया जाने लगा। 5 लड़के और 5 लड़कियों को मार्केटिंग, नेटवर्किंग, लीडरशिप, एंट्रेप्रेन्योरशिप का प्रशिक्षण भी दिया गया। इन सभी कार्यों में चर्च की ओर से भी मदद मिलने लगी। एक नये वातावरण का निर्माण होने लगा। महिलाओं का एक समूह बनाया गया, जिसमें सभी महिलाओं को यह प्रशिक्षण दिया जाने लगा कि वे शुरू से ही अपने बच्चों को खासकर लड़कों को शराब पीने के दुर्गुण की जानकारी देना शुरू कर दें। महिलाओं ने इस योजना को मिशन मोड पर लेना शुरू किया। हरेक रविवार को चर्च में प्रार्थना की समाप्ति पर, इस बाबत किये गये कार्यों पर बृहत् चर्चा की जाती।

इस बात पर, पूरे गाँव के लोगों को प्रशिक्षित किया जाता कि सड़क पर, पार्क में न थूकें, पान खाकर गंदगी न फैलाएं, बीडी सिगरेट अथवा किसी भी तरह का धूम्रपान न करें, सड़क पर एवं सड़क के किनारे गंदगी न फेकें। मैं अंत में संगाईप्रो जनवरी,2000 में गया था। अभी भी लोग सफाई को अपना दैनिक जीवन का अभिन्न अंग मानते हैं। मैंने पुरे गाँव के सड़क, सड़क के दोनों ओर व पार्क, घरों के दीवार कहीं भी किसी तरह की गंदगी नहीं देखी। कहीं दुर्गन्ध नहीं। दिल्ली जैसे महानगरों के लोगों को वहाँ जाना चाहिए और सीमित साधनों में सफाई कैसे रखी जाती है, यह उनसे सीखना चाहिए। आप उनके वस्त्र, उनके शरीर, उनके बोलने के अंदाज देखें, आपको लगेगा, ये लोग ही रोल मॉडल हैं। उनसे बहुत

कुछ सीख सकते हैं हम और आप, जो अपने-आप को बहुत सभ्य, सुशिक्षित होने का दंभ पालते हैं।

कहता चलूँ कि जब मैं मणिपुर में कार्य कर रहा था, तो वहाँ के विद्वानों ने बताया कि मणिपुर में सबसे पहले प्रजातंत्र की स्थापना की गयी। उसका जीवंत प्रमाण मुझे एक बार मिला। कैसे? हुआ यह कि एक बार जब मैं संगाईप्रो गाँव में काम कर रहा था, तो देखा कि एक व्यक्ति विधानसभा का चुनाव लड़ रहा था। वह उस गाँव लोगों से अपने लिए वोट मांगने आया था। गाँव के लोग – स्त्री और पुरुष सभी एक पंक्ति में खड़े थे। सभी अपने हाथों में चावल, नकद राशि एवं कुछ अन्य सामान लेकर उस कैंडिडेट के समीप जा रहे थे। उसके पास जाकर उसके सामने विनम्रता से चावल, पैसे एवं अन्य सामग्री उसको देते। वह लेता जाता और सभी सामान को वहीं एकत्रित करते जाता। जब सभी ने अपना-अपना सामान दे दिया, तो वह उन्हें अपने साथ आये प्रतिनिधि को कहकर अपनी गाड़ी में डाल देता। मेरा जिज्ञासु मन इसका कारण ढूंढने लगा। गाँव के एक बुजुर्ग ने मुझे बताया कि हम लोग इस परम्परा का पालन अनन्त काल से करते आ रहे हैं। चावल, पैसा एवं अन्य सामग्री देने का मतलब है कि यह नेता हम लोगों के कल्याण के लिए चुनाव लड़ रहा है। इसको अगर हम लोग आर्थिक और समाजिक तौर पर मदद नहीं करेंगे तो यह कहाँ से धन लाएगा? या तो अपनी सम्पति बेच लेगा, या चुनाव हार जायेगा या गलत तरीके से धन संचय करेगा।

मुझे लगा, काश पूरे भारत के नेता, इसी परम्परा का पालन करते तो चुनाव आयोग को किसी भी तरह का नियम, उपनियम आदि बनाने का जरूरत नहीं पड़ती।

हम अपनी बात कहते हुए अनेक प्रसंग को एक साथ जोड़ने लगते हैं। जोड़ना भी अनिवार्य है। सूत्र और संदर्भ को तो एक साथ पिरोना ही होगा। अब आते हैं शराब की लत और असमय मृत्यु पर। बच्चों के अनाथ होने की घटना पर और महिलाओं के असमय विधवा होने की विवशता पर। जिस संस्था ने इनके लिए कार्य शुरू किया था, उस संस्था की चीफ एग्जीक्यूटिव ऑफिसर के लिए बार-बार मणिपुर जाना और वहाँ काम करने से अधिक सहज यह था कि वह दिल्ली के अगल-बगल काम करे। और भी बहुत सारे कारण थे, जिसके चलते यह परियोजना बीच में ही दम तोड़ने लगी। यह उत्तर-पूर्व भारत के अधिकांश सुदूर और दुर्लभ क्षेत्र के साथ अक्सर होता है। बाहर के लोग दंतकथा गढ़ लेते हैं कि वहाँ स्थानीय सहयोग नहीं मिलता। लोग अच्छे नहीं हैं। स्थान दुर्गम है। बार-बार कौन जाए। उनकी बात को उनके जैसे ही लोग सुनते हैं और असत्य को सत्य मान लेते हैं। मुझे बहुत लोग पूछते रहते हैं: "कैलाश जी आपको नागालैंड, मणिपुर, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश जाते और लोगों के साथ रहते डर नहीं लगता?" उनका प्रश्नवाचक चिन्ह बहुत खतरनाक होता है! जब मैं उन्हें कहता हूँ: "डर किस चीज का? वे तो संसार के सबसे उन्नत और मधुर मानव और मानवी हैं। आप डर कह रहे हैं, मैं तो उनके साथ सबसे अधिक सुरक्षित अनुभव करता हूँ। मैं उनके साथ उनके जैसा हो जाता हूँ। वे मुझे गैर नहीं समझते,

अपना समझते हैं। वे मेरी हिफाजत करते हैं। वे मेरे बंधू, बांधवी, सखा, मित्र सब हैं। उनसे डर कैसा?"

आपको मालूम है कि समस्त भारत में मणिपुर राज्य ही ऐसा है, जहाँ जिला छोड़ दीजिये ब्लाक स्तर पर महिलाओं के लिए अलग बाजार की व्यवस्था है, जिसे इमा या एमा मार्केट अथवा माँ बाजार कह सकते हैं। यह क्या है? यहाँ केवल महिलाएं ही अपना समान बेच सकती हैं। पुरुष खरीद सकते हैं, लेकिन दुकान नही लगा सकते। कभी अगर मणिपुर जाने का अवसर मिले तो एमा बाजार जरुर जाइए, आपको लगेगा कि भारतवर्ष में महिलाओं का अगर सर्वोच्च सम्मान कहीं है, तो यहीं हैं, यहीं हैं। प्रमाण देता हूँ, जिससे आप मेरे कथ्य की प्रमाणिकता के साथ मेरी लेखनी को पढ़ें।

बात माताओं की कर रहे थे, तो इतना कहना अनिवार्य समझता हूँ कि महिलायें आगे आ रही हैं। शराब के विरुद्ध बिगुल बजा चुका है। लेकिन अभी यात्रा लम्बी है। उन्हें अनेक समस्याओं को झेलना है। उन्हें अनेक संस्थाओं से, संस्थानों से, सरकार से मदत की आवश्यकता है। उनके विश्वास अटल हैं। वे जानती हैं कि उनका संघर्ष कठिन अवश्य है, यह समय लेगा, लेकिन असंभव नहीं है।

संगाईप्रो की काबुई नागा महिलाओं को नमन। उनके सखा-संतान और युवकों की जय।

14

नॉर्थ कछार हिल्स: भारत का एक और स्वर्ग

नॉर्थ कछार हिल्स, जिसका नाम अब 'दिमा हसाओ' जिला कर दिया गया है सचमुच में धरती का स्वर्ग है। एक ऐसा स्वर्ग जो निश्छल है। यहाँ की प्रकृति और यहां के मानव दोनों अनुपम है। अगर प्रकृति का कौमार्य देखना हो तो नॉर्थ कछार हिल्स आ जाएँ। आप यहाँ आकर एक अलग संसार में आ गए हैं, इस अनुभूति से मस्त हो जायेंगे। लेकिन यह क्षेत्र, पता नहीं क्यों, आज बहुत ही असुरक्षित क्षेत्र हो गया हैं। प्रतिदिन यहाँ अनहोनी घटना होते रहते हैं। जब यहाँ के अनेक जनजातीय समूह के प्रतिनिधि मुझसे मिले और नॉर्थ कछार हिल्स के जिला मुख्यालय हाफलोंग में कुछ काम करने के लिए निवेदन किया, तो मैंने निर्णय ले लिया कि यहाँ काम करना है। डॉ चक्रवर्ती महोदय ने मुझे कुछ सावधानी बरतने का निर्देश देते हुए यहाँ पर एक कार्यक्रम करने की अनुमति दे दी थी। हम लोग पहले ही श्रीमंत शंकरदेव कलाक्षेत्र के सचिव गौतम शर्मा के साथ इस ज़िले के जिला अधिकारी श्री अनिल कुमार बरुआ जो कि नॉर्थ कछार घाटी ऑटोनोमस काउन्सिल के पदेन प्रिंसिपल सचिव भी थे, इस सम्बन्ध में विस्तृत बातचीत कर चुके थे। उन्होंने सभी तरह के सहयोग करने का वचन दिया था। डॉ चक्रवर्ती ने

एसपी से भी अपने स्तर से बातचीत कर ली थी। सभी आदिवासी समूहों का समर्थन तो हमें मिल ही गया था।

अब क्या था। हमने 23 नवम्बर, 2007 से 10 दिवसीय संस्कृति एवं विरासत प्रलेखन का कार्यक्रम नॉर्थ कछार घाटी के मुख्यालय हाफलोंग में करने का प्लान बना लिया था। गुआहाटी से हाफलोंग की सड़क मार्ग से दूरी 261 किलोमीटर है। हम लोग टाटा सूमो (जीप से) से 22 नवम्बर को साढ़े चार बजे प्रातः गुआहाटी से हाफलोंग के लिए निकल पड़े। नागांव होते हुए, हम लोग होजाई की तरफ से आगे बढ़े और टूटे-फूटे पहाड़ी रास्तों और कई चेकपोस्टों, जिनमें जगलात विभाग और अन्य विभाग के चेकपोस्ट भी शामिल थे, पर कई-कई घंटे लगाकर अन्ततः, साढ़े ग्यारह बजे रात में हाफलोंग पहुँच गए। मन में भय तो था ही। होना भी लाज़िमी था! हम लोगों के आने से दो दिन पहले ही हाफलोंग शहर में पाँच लोगों को गोली मार दिया गया था।

हमारे विश्राम के लिए हाफलोंग सर्किट हाउस मे व्यवस्था कर दिया गया था। सर्किट हाउस शहर के सबसे ऊँचे स्थान पर रम्य जंगलों के सानिध्य में अंग्रेजी हुकूमत के द्वारा बनाया गया था। यहाँ खड़े होकर आप प्रकृति के सौन्दर्य और कौमार्य का अवलोकन कर सकते हैं। इतना ही नहीं, समस्त हाफलोंग शहर एवं अगल-बगल के क्षेत्रों को भी देख सकते हैं। यहाँ रहने का मतलब है आप इस हाफलोंग शहर की आत्मा में निवास कर रहे हैं। अगर आपने इस जगह को नहीं देखा तो हाफलोंग नहीं देखा। वैसे सड़क मार्ग से, गुवाहाटी से हाफलोंग आते हुए इतना तो स्पष्ट हो चुका था कि हम

जिस भूमि पर क़दम रखने जा रहे हैं वह विशिष्ट ही नहीं अति विशिष्ट है।

मुझे जो कमरा मिला था वह काफी लम्बा-चौड़ा था। लकड़ी का काम साफ दिखाई दे रहा था। पलंग और फर्नीचर सभी अंग्रेजों के ज़माने के बने हुए थे, जो काफी मजबूत और कलात्मक थे। उनमे रॉयल टच महसूस कर रहा था मैं। बहुत थक गया था मैं गुवाहाटी से हाफलोंग 18-19 घंटे के रस्ते में। अब सोना चाहता था। कपड़ा बदलकर सोने की तैयारी करने लगा। रात में भोजन नहीं करना है, इसके लिए मन को मना लिया था। गौतम शर्मा एक स्थानीय कलाकार के साथ आ गए। मैं उठकर बैठ गया। शर्माजी कहने लगे: "जल्दी चलिये। भोजन तैयार है"। नॉर्थ कछार हिल्स ऑटोनोमस काउन्सिल के कला एवं संस्कृति विभाग के निदेशक श्री लंगथासा महोदय भी शर्माजी के साथ थे। उन्हीं के प्रयास से संस्कृति भवन के प्रांगण में, हम लोग कार्यक्रम करने जा रहे थे। लंगथासा स्वयं दीमासा जनजाति से थे। उनकी उदारता और संस्कृति प्रेम से मैं अचम्भित था। लंगथासा कहने लगे: "हम लोगों के लिए यह गौरव का विषय है कि आप लोग दिल्ली से आकर इस उपेक्षित क्षेत्र में कार्य करना चाहते हैं, जहाँ कोई भी आना तक नहीं चाहता। हम लोग भी आपको भरोसा दिलाना चाहते हैं कि आप लोगों के साथ संस्कृति एवं धरोहर की रक्षा के प्रति हम भी कृतसंकल्पित हैं और कदम से क़दम मिलाकर चलना चाहते हैं। वैसे तो, यहाँ असम राइफल्स, सैनिक, पुलिस आदि का जमघट लगा रहता है, परन्तु संस्कृति और विरासत की चिन्ता किसे है? आपलोगों को कैसे धन्यवाद दूँ"।

मैं लंगथासा महोदय की ओर देखते हुए बोला: "यदि आप लोग चाहें तो हम लोग अपनी टीम के साथ इस क्षेत्र की सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए बार-बार आयेंगे"।

मेरे बात पर उत्साहित होते हुए लंगथासा महोदय बोले: "हम लोग हर तरह से सहयोग करने के लिए तैयार हैं मिश्रा सर। यहाँ के सभी अलगाववादी, सरकार विरोधी जत्था समूह कोई भी संस्कृति रक्षण और संरक्षण का विरोधी नहीं है। सभी लोग और समूह आपके यहाँ आने के निर्णय से खुश हैं। सभी अंडरग्राउंड समूह के लोगों ने मुझे वचन दिया है कि जब तक आप लोग हाफलोंग में रहेंगे, तब तक यहाँ किसी भी प्रकार की हिंसा अथवा मार-काट की घटना नहीं होगी। आपको जिस प्रकार का स्थानीय सहयोग चाहिए, हम लोग देने के लिए तैयार हैं सर।"

अब हम लोग रात्रि भोजन के लिए चल पड़े। बहुत ही स्वादिष्ट और चटकारे वाला भोजन था-भात, मछली, दाल, लौकी की सब्जी, सलाद, मिठाई, चटनी। भोजन के बाद पुनः सर्किट हाउस आ गए।

अगले दिन प्रातः पाँच बजे उठकर बाहर आया। मनोरम दृश्य देखकर मन मस्त हो गया। सर्किट हाऊस के बाहर से देखने पर ऐसा लग रहा था जैसे सूर्य अपनी लालिमा लेकर लाल गेंद की तरह उदित हुए हों। हरे जंगल, कलकल करती छोटी परन्तु घुमावदार नदी का प्रवाह, दूर जंगलों के मध्य आदिवासी समुदायों के छोटे-छोटे कलात्मक कुटीर, सब कुछ मनमोहक लग रहे थे। लगता था, यहीं रह जाऊं।

हम लोगों को कार्यक्रम की शुरुआत सायं छह बजे से करनी थी। मैंने सोचा क्यों न दिन में हाफलोंग और इसके अगल-बगल के क्षेत्रों का मुआयना किया जाय।

अब हम घूमने लगे। डर का तो अंत हो ही चुका था। हम निश्चिन्त होकर घूम रहे थे। लोगों से जानकारी ले रहे थे। सभी लोग बहुत बढ़िया से हमारी जिज्ञासा को समझ रहे थे और हाफलोंग हिंदी में उसका उत्तर भी दे रहे थे। स्थानीय लोगों ने बताया कि हाफलोंग मूलतः "हंगक्लोंग" से बना है जिसका अर्थ होता है सम्पन्न और रत्नगर्भा धरती। कुछ विद्वान बता रहे थे कि हाफलोंग हफलाऊ (HAFLAU) शब्द से बना है। हफलाऊ शब्द का अर्थ उनके अनुसार, बाल्मीकि पहाड़ी (Ante Hill) है। हाफलोंग शहर का निर्माण अँग्रेज प्रशासन के द्वारा 1895 ई में बोराइल रेंज पर एक छोटे हिल स्टेशन के रूप में किया गया। प्रारम्भ में, यहाँ चीड़, देवदार के लाइन में खड़े पेड़ थे, नौ छेद वाला गोल्फ कोर्स, लघु किन्तु आकर्षक और कलात्मक बंगला, हाफलोंग लेक, रेलवे के कर्मचारियों के लिए स्टाफ क्वार्टर, छोटा बजार, रेलवे स्टेशन आदि सुविधा के साथ इस शहर का निर्माण और इसे एक हिल स्टेशन के रूप में विकसित किया गया।

अंग्रेज अधिकारियों ने, जो इस शहर और क्षेत्र को विकसित करने के लिए किया है, उसकी बिना प्रशंसा किये बिना आप नहीं रह सकते। इस सिलसिले में 36 खोह या गुफा(tunnels) का निर्माण कर रेल लाइन ले जाना, उस ज़माने में अर्थात् 1895-98 में आसान काम नहीं रहा होगा! रेलवे के निर्माण कार्य से लेकर शहर तक के निर्माण के लिए ठेकेदार, मजदूर, कर्मचारी, व्यापारी आदि सभी

उत्तर-प्रदेश, बिहार, बंगाल और असम के अन्य स्थान से लाये गए थे। अतएव आपस में वार्तालाप हेतु बाजार की भाषा के रूप में एक नवीन हिन्दी को विकसित किया गया। इस हिंदी का नाम हाफलोंग-हिन्दी रखा गया। आज यह इसी रूप में जानी जाती है। यह हिंदी व्याकरण उन्मुक्त हिंदी है अर्थात इसमें व्याकरण को अपने हिसाब से प्रयोग कर सकते हैं। हाफलोंग हिंदी की एक विशेषता यह भी है कि इसे रोमन लिपि में लिखा जाता है। स्थानीय विद्वानों के कठिन संघर्ष के कारण आजकल हॉफलोंग हिंदी को साहित्य अकादमी से मान्यता मिल गया है।

नॉर्थ कछार हिल्स अगर आप गम्भीरता से और उदार होकर देखेंगे, तो यह असम राज्य की बहुरंगी चुनरी के समान है। यहाँ निम्नलिखित ग्यारह जनजातियां रहती हैं:

1. दीमासा अथवा कछारी (Dimasa or Cachari)
2. मार या ह्मार (Hmar)
3. जेमि नागा (Zeme Naga)
4. कुकी (Kuki)
5. बइते (Baite)
6. कार्बी (Karbi)
7. खासी अथवा नार या प्नार (Khasi or Pnar)
8. ह्रांगखल (Hrangkhals)
9. वइफी (Vaiphies)
10. खेलमा (Khelma)
11. रोंगमई (Rongmei)

कहता चलूँ कि इनमें तीन समुदाय: जेमि नागा, रोंगमई और ह्रांगखल नागा समुदाय से ताल्लुक रखते हैं। इसके अलावा, कुछ अन्य समुदाय जैसेकि बंगाली, असमिया, नेपाली, मणिपुरी, मुसलमान, देसवाली आदि भी यहाँ रहते हैं। अगर आप यहाँ रहेंगे तो आपको सभी समुदायों के बीच भावनात्मक एकता देखने को मिलेगा। भारत में अनेकता में एकता का स्वरूप लगा जैसे अपने मिनिएचर स्वरुप धारण कर इस छोटी धरती के खंड पर मॉडल बनकर "साथ-साथ चलना, रहना, खाना" के मूल मन्त्र को यहाँ चरितार्थ कर रहा हो।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद, भारत के अन्य शहर की तरह हाफलोंग भी धीरे-धीरे विकसित हो रहा है। 1970 ई. में इसे जिला का मुख्यालय बना दिया गया। आज के समय में, नॉर्थ कछार हिल्स ऑटोनोमस काउन्सिल का मुख्यालय, विभिन्न सरकारी विभागों के दफ्तर और मकान, आवासीय परिसर, पार्क, जेल, खेल परिसर और मैदान, दो रेलवे स्टेशन, सिविल अस्पताल, प्राइमरी से लेकर हायर सेकेण्डरी स्तर के विभिन्न विद्यालय, सभी सुविधाओं से परिपूर्ण सरकारी महाविद्यालय जिसमें कला, विज्ञान एवं वाणिज्य संकाय के अधिकांश विषयों की पढ़ाई की सुविधा सहजता से उपलब्ध है। पानी की सुविधा, डाक, टेलीग्राम, टेलीफोन, बैंक, चर्च, मन्दिर, मस्जिद, पुस्तकालय अनेक तरह के सामाजिक-सांस्कृतिक क्रिया-कलाप मे संलग्न संस्थाएं; सिनेमा हॉल, बस स्टैण्ड आदि सुविधायें भी उपलब्ध हैं।

यदि आप रेल से हाफलोंग आना चाहते हैं, तो गुआहाटी से नॉर्थ फ्रन्टियर रेलवे के लम्डिंग हिल स्टेशन से मीटरगेज द्वारा लोअर

हाफलोंग स्टेशन आ सकते हैं। गुआहाटी से हाफलोंग की दूरी रेल पथ से 285 किलोमीटर है। सिलचर से बदरपुर होते हुए हिल हाफलोंग स्टेशन की दूरी 92 किलोमीटर है।

रेल बोगी में बैठकर नॉर्थ कछार हिल्स की नीली पहाड़ी का अवलोकन करना, स्वर्ग के अवलोकन से तनिक भी कम नहीं है। पहाड़ी धरती पर टेढ़े-मेढ़े (जीग-जैग) रास्ते नगाँव से प्रारम्भ होकर समस्त नॉर्थ कछार हिल्स के उत्तर से दक्षिण दिशा में इस ज़िले के तीन प्रमुख नदी- माहुर, दीयूंग और जटिंगा- के साथ-साथ चलते रहते हैं और आप आनंदविभोर होते रहते हैं। एक क्षण के लिए आप अनुभव करेंगे कि पानी, रेल की पटरी और रेल यात्री का मन तीनों आपस में ताल से ताल मिलाकर गतिमान हो रहे हैं!

उपर्युक्त तीन नदियों के आलावा, इस धरती में चार और छोटी-मोटी नदियाँ बहती हैं। ये नदियाँ हैं: जीनाम, लंगटींग, कोपिली, डिलेयमा। सबसे बड़ी नदी दीयूंग है जिसकी लम्बाई 240 किलोमीटर है।

1866 मीटर की ऊँचाई पर अवस्थित थुंगजांग पहाड़ी सबसे ऊँचे स्थान पर है।

नॉर्थ कछार हिल्स, पूर्व दिशा में नागालैण्ड और मणिपुर से; पश्चिम में मेघालय और असम का कार्बी अंगलौंग जिला से; उत्तर में नगांव और कार्बी अंगलोंग जिला तथा दक्षिण में बराक घाटी के कछार जिला से घिरा हुआ है। 4890 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला नॉर्थ कछार हिल्स की सामान्य ऊँचाई समुद्र तल से 3116 फीट है।

यहाँ के आदिवासी मूल रूप से आज भी झूम खेती करते हैं। झूम में परंपरागत तरीके से एक भाग के जंगल-झाड़ को काटकर उसमें

आग लगा देते हैं और उसके बाद खेती करते हैं। यहाँ 17,293 हेक्टेअर जमीन झूम खेती के रूप में लोग प्रयोग में लाते हैं। इस जनपद में 4529 वर्ग किलोमीटर धरती जंगल से आच्छादित है। 610.51 वर्ग किलोमीटर सुरक्षित और बाकी हिस्सा राज्य सरकार द्वारा संपोषित है। तीन सुरक्षित जंगल क्षेत्र का नाम क्रमशः

1. लांगटींग-मूपा सुरक्षित जंगल (497.55 वर्ग किलोमीटर)
2. कूरुंग सुरक्षित जंगल (124.42 वर्ग किलोमीटर)
3. बोराइल सुरक्षित जंगल (89.83 वर्ग किलोमीटर)

गुआहाटी में कुछ मित्रों से जानकारी मिली थी कि नॉर्थ कछार हिल्स में जटिंगा पहाड़ी पर चिड़ियां समूह बनाकर रात में रोशनी देखने पर रोशनी पर प्रहार करती हैं तथा सामूहिक रूप से सुसाइड या आत्महत्या कर लेती हैं। पक्षीशास्त्री इस विषय पर गहन शोध में बहुत दिनों से लगे हुए हैं, यद्यपि अभी तक किसी ठोस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं। यह रहस्य अभी तक बना हुआ है। अब वहाँ अर्थात उस स्पॉट पर रात्रि में रौशनी जलाना प्रतिबंधित हैं। इस बात की सत्यता जानना चाहता था। गुआहाटी में ही सोच लिया था कि इस पहाड़ी पर अवश्य जाऊँगा। आज यह अवसर लंगथासा महोदय की कृपा से मिल गया था। हम लोग तुरत उनलोगों के साथ जटिंगा के लिए चल दिए।

जटिंगा पहाड़ी और गाँव के रास्ते में विभिन्न प्रकार के बेंत की झाड़ी और बाँस देखकर मन प्रफुल्लित था। नॉर्थ कछार हिल्स की कुल धरती (489000 हेक्टेअर) में लगभग 307900 हेक्टेअर में बाँस है। बाँस अनेकों प्रकार की प्रजाति के हैं। असम प्रदेश में 33 प्रजाति के बाँस होते हैं जिसमे लगभग 20 प्रजाति इस क्षेत्र में पाए जाते हैं।

बाँस की प्रमुख प्रजातियों में काको/ पीछा वा पीछा, जाति, डालू, मूली, हिलजाति, कता, मकालू, काली-सूण्डी, टेराई आदि नाम ऐसे हैं, जो यहाँ के सामान्य लोग भी जानते हैं। बाँस इस क्षेत्र के लोगों के जीवन का प्रमुख आधार है। इसका प्रयोग झोपड़ी, जाफरी, इंधन, पूल आदि बनाने के लिए किया जाता है। बाँस का प्रयोग सब्जी, अचार, फेर्मेंट करके भोज्य सामग्री, सलाद आदि में भी लोग प्रयोग करते हैं। बाँस के बने गिलास और कप एवं मग का प्रयोग चावल, मकई, आदि से बने स्थानीय दारू पीने के लिए भी किया जाता है। इसके अलावा, बाँस का प्रयोग बर्तन, फर्नीचर, कृषियन्त्र एवं उपकरण, धनुष-बाण, कलात्मक वस्तु, हस्तकला, बत्ती, सीढ़ी इत्यादि में होता है। बाँस से ये आदिवासी अनेक वाद्ययंत्रों का भी निर्माण करते हैं।

अन्ततः हम लोग जटिंगा गाँव पहुँच गए। जटिंगा बोराइल रेंज के पादगिरि (foothills) पर बसा हुआ है। यह पहाड़ी तरह-तरह के प्रवासी एवं देशी चिड़ियों की विश्राम-स्थली है। इस स्पॉट या स्थान पर सितम्बर-अक्टूबर महीनों में पक्षी सब कृष्णपक्ष के रात में किसी भी प्रकार की रोशनी जैसे की टॉर्च, मशाल आदि देखकर झुण्ड के झुण्ड में आकर गिरने लगते हैं या यों कहें कि आत्महत्या करने लगते हैं। जटिंगा गाँव हाफलोंग शहर से आठ किलोमीटर की दूरी पर है। स्थानीय लोगों से जानकारी मिली की कृष्णपक्ष के समय गहन अँधेरी रात में रोशनी देखकर चिड़ियाँ अपने आँखों की रोशनी उसके चकाचौंध में खो देती हैं और उनका संतुलन बिगड़ने लगता है, जिसका फायदा उठाकर शिकारी लोग बाँस या बेंत से प्रहार कर उन लाचार पक्षियों को पकड़ लेते हैं।

कृष्णपक्ष की रात और एक निश्चित वातावरण का होना भी पक्षियों के सामूहिक आत्महत्या का कारण बन जाता है। यह कारण है हवा के बहने की दिशा। हवा अगर दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व में बह रही है तो सही है। बोराइल पहाड़ी के अगल-बगल में धुंध और शीत का लगना भी जरुरी है। धुंध में अगर झलफलाती रोशनी है, तब तो ठीक है। ऐसी स्थिति में, जब दक्षिण दिशा से धुंध चलने लगता हैं, तब चिड़ियों का दल जटिंगा की ओर उड़ने लगते हैं। सामूहिक आत्महत्या करने वाले पक्षियों में लाली चिड़िया (Indian ruddy), कौड़िल्ला (Kingfisher), भारतीय नौरंग (Indian pitta), हारिल, ब्लैक ड्रोंगो, सफ़ेद बगुला, चितकबरी पंडूक, बटेर आदि प्रमुख हैं।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आत्महत्या करने वाली चिड़ियों में अधिकांश देशी चिड़ियाँ हैं, प्रवासी चिड़ियाँ इन घटनाओं के शिकार नहीं होते। स्थानीय लोगों ने यह भी बताया कि यह प्रवृत्ति समस्त जटिंगा पहाड़ी में नहीं हैं। मात्र डेढ़ किलोमीटर की लम्बाई और 200 मीटर चौड़ाई की सीमा में इसका पीक प्वाइंट है।

जटिंगा गाँव के एक पच्चासी वर्ष के प्नार (खासी) जनजाति के बुजुर्ग के मुताबिक चिड़ियाँ जटिंगा में कृत्रिम रोशनी में सामूहिक आत्महत्या करती हैं, इस बात की जानकारी सर्वप्रथम 1914 ई के आसपास पता चला। कहते हैं कि एक रात किसी का चार-पांच बैल जंगल की ओर भाग गया। बैल के मालिक को लगा कि अगर बैल को रात में ही नहीं पकड़ा गया, तो बाघ शेर या अन्य हिंसक जानवर उन्हें मार कर खा सकते हैं। इसीलिए पाँच आदमी एक टोली बनाकर बाँस के लट्ठ में कपड़ा लपेटकर उसमें मिट्टी तेल उड़ेल

कर उसका मशाल बनाकर और हाथ में लालटेन लेकर रात में ही बैल की खोज में जंगल में चल पड़े। थोड़ी देर में वे यह देखकर आश्चर्यचकित रह गए कि चिड़ियाँ झुण्ड में आकर मशाल के सामने गिरने लगीं। परन्तु इन लोगों ने उन पक्षियों को नहीं पकड़ा। अब प्रश्न यह उठता है कि उन्होंने ऐसा क्यों किया? स्थानीय जेमि नागा समुदाय (जनजाति) में यह भ्रान्ति फैला था कि जटिंगा क्षेत्र में रात को भूत-प्रेत पक्षी के वेश में विचरण करते रहते हैं। उन लोगों को भय इस बात का हुआ कि पक्षियों के पकड़ने से उनका कोई अनिष्ट न हो जाय।

1917 ई के आसपास लाखन-सारा नामक एक व्यक्ति कृत्रिम रोशनी से चकमा खाकर गिरे पक्षियों को पकड़ घर लाया और उसका मांस भूजकर खा लिया। संयोग से इसका कोई भी दुष्प्रभाव नहीं हुआ। इसके बाद चिड़ियों का जीवन दूभर हो गया। लोग कृष्णपक्ष की रात्रि में कृत्रिम रोशनी की मदद से चिड़ियों का शिकार करने और उनका संहार करने लगे। हालाँकि जब अंग्रेज प्रशासन को इस बात की जानकारी मिली, तो उन्होंने इस परंपरा पर रोक लगा दिया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लोग पुनः चोरी-चोरी लोगों ने शिकार करना शुरू कर दिया। अब पर्यावरणविद्, पक्षीशास्त्री, पत्रकार एवं अन्य लोगों के अथक् प्रयास के कारण, प्रशासन ने पुनः कृत्रिम रोशनी से चिड़ियों को मारने की प्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। मैं उस स्पॉट पर गया। वहाँ पर हमें रंग बिरंगे चिड़ियों के आकर्षक फोटो टंगे हुए मिले। एक मूल वाक्य जो अन्तस् को भा गया, वह

यह था: “SHOOT THESE BIRDS WITH YOUR CAMERA, NOT WITH BULLETS.”

अब शाम हो चली थी। हम लोग जटिंगा से सर्किट हाउस आ गए। कुछ ही क्षण में तैयार होकर कार्यक्रम स्थल पर पहुँच गए। वहाँ पाँच हजार लोग उपस्थित थे। सभी जनजातियों के स्त्री, पुरुष, बच्चे, बुजुर्ग, अपने-अपने सामुदायिक वस्त्र और गहनों से सुसज्जित थे। प्रशासन से सहयोग तो मिल ही रहा था। डिप्युटी कमिश्नर, नॉर्थ कछार हिल्स ऑटोनोमस काउन्सिल के चेयरमैन, सदस्य, प्रमुख सचिव, एस.पी., स्थानीय कॉलेज के शिक्षक एवं छात्र सभी उपस्थित थे। स्थानीय पत्रकार अलग ही उत्साह दिखा रहे थे।

सभी अपनी कृतज्ञता व्यक्त कर रहे थे। मैं सोचने लगा कैसी विडम्बना है। जो क्षेत्र सांस्कृतिक सम्पन्नता का खान है, उसका ऐसा अपमान! मुख्यधारा से इस क्षेत्र को वंचित क्यों किया गया है! मैंने अनुभव किया कि समस्त विश्व मे नॉर्थ कछार हिल्स से शान्त और सांस्कृतिक वैविध्य से भरा कोई जगह हो ही नहीं सकता। मैंने अपने भाषण में कहा: “हम लोग आपको सिखाने के लिए नहीं आये हैं। हम लोग आये हैं आपको जाग्रत करने के लिए कि आप लोग अपनी सांस्कृतिक विरासत, वैविध्य और गरिमा को समझें, उसका सम्मान करें और उसको जीवंत रखें। इसे मरने न दें, अन्यथा आनेवाली पीढ़ी आपको माफ़ नहीं करेगी। हम लोग आये हैं, आपकी सांस्कृतिक विरासत को समझने, उसको डॉक्यूमेंट करने के लिए। अगर आप लोग सहयोग करते रहें, तो मैं वादा करता हूँ कि बार-बार आऊंगा। हमारे कार्यक्रम और एक्शन में कौमा (,) या अर्धविराम हो सकते हैं, पूर्ण विराम कभी नही होता।”

पहले दिन का कार्यक्रम लगभग साढ़े-नौ बजे रात तक चला। रात में भोजन के उपरान्त विश्राम करने गया, तो एक स्थानीय विद्वान के दिए हुए पुस्तक को पढ़ने लगा। पुस्तक नॉर्थ कछार हिल्स पर था। इस पुस्तक में रातु हकमओसा नामक स्थानीय कवि के नॉर्थ कछार हिल्स पर लिखित चन्द पंक्तियां मन को भा गईं। उन पंक्तियों को आपसे भी बाँट लेते हैं:

A harmonious game of hide and seek
Behind the bushes, marshy meadow
Under shadow with clouds view,
Ever ready for worthwhile, cherish at dawn,
The blues make enchanting heart of lovers
Midst of covers white
Changing scene that lively for romance
Beauty and bounty of brooks that flow.
Moments of joy, love to cherish
Insight the harmony game of hide and seek
Behind thick trespasses of white and blue
With narrow path of zig-zag.
The beauty of hills under cover
Orchids, white fall, violet at hills
Every moment thrilled with behalf
Nature disposal at North Cachar Hills

अपनी लेखनी को विराम देने से पहले इतना जरुर कहूँगा कि आपने शिमला, नैनीताल, श्रीनगर और न जाने कहाँ-कहाँ देखे होंगे; अगर सच में स्वर्ग देखना चाहते हैं, तो एकबार हाफलोंग चले जाइए। भारत का स्वर्ग वहीं है। वहीं है। वहीं है।

15

रानी ग़ैदिनल्यू और हरेका आन्दोलन: नागा अस्मिता के लिए संघर्ष

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि नागा समुदाय के एक बहुत बड़ा वर्ग ने आत्ममंथन करना शुरू कर दिया था और यह चिंतन आज भी जारी है कि ईसाई मिशनरी के लोगों ने उन्हें ईसाई तो बना दिया, लेकिन उनसे उनका अस्तित्व छीन लिया। ईसाई बनाने की प्रक्रिया शायद इस भावना से प्रेरित था कि नागा परम्परागत रूप से पढ़े-लिखे नहीं हैं, उनकी सोच भ्रामक और अवैज्ञानिक है, वे लोग अपनी परम्परा और देवताओं के कारण अन्धविश्वास में जीते हैं, उनका जीवन बहुत ही बेकार और अमानवीय है। इस बात की अनुभूति आप तभी कर पायेंगे, जब आप ईसाई मिशनरियों का आगमन, उनका विस्तार आदि पर ईमानदारी से कार्य करेंगे। हो सकता है नागा एवं अन्य जनजातीय समुदाय का एक बहुत बड़ा वर्ग जो इसाई हो चुके हैं, आपके कथ्य और एथनोग्राफिक अनुसन्धान पर प्रश्न उठाना शुरू कर दें, लेकिन सत्य का उद्घाटन तो करना ही होगा। मैं कहता हूँ, आप ईसाई धर्मान्तरण का इतिहास पढ़ लें। भारत के विभिन्न आदिवासी क्षेत्रों में ईसाई मिशनरी के आगमन और विस्तार की गाथा पढ़ें, तो आपको लगेगा कि इन लोगों ने धन, प्लानिंग, अख़बार, पत्रकारिता, शिक्षा और स्वास्थ्य

सेवा एवं अस्पताल, विद्यायल एवं महाविद्यालय का निर्माण कर परम्परागत आदिवासी धार्मिक भावना, हिन्दू धर्म से प्रभावित आदिवासी धर्म, अनुष्ठान, कर्मकांड आदि पर प्रहार करते हुए लोगों को गुमराह किया और उन्हें ईसाई बनाते रहे। भारत के तथाकथित बुद्धिजीवी, वाममार्गी विद्वान उनका समर्थन करते रहे। ईसाई मिशनरियां, आदिवासी समाज के उत्थान के लिए कार्य करती रही। उनमें शिक्षा का विस्तार, उनके उत्तम स्वास्थ्य के लिए व्यवस्था और अनेकानेक कार्य करते रहे, लेकिन सभी अच्छे कार्यों में धर्म परिवर्तन मूल था। इसी परम्परा का पालन मदर टेरेसा भी करती रहीं। उनके करुणा में आदिवासियों एवं अन्य लोगों का अपने धर्म से ईसाई में परिवर्तित करना ही मुख्य था। परिवर्तन का यह नेटवर्क उनको नोबल पुरस्कार तक ले गया। नहीं तो, जिस अंग्रेज ने नागा को असभ्य, बर्बर कहकर उनके गाँव-के-गाँव जला दिये, असंख्य लोगों को ख़त्म कर दिया, उन्हीं के लोगों ने नागा समुदाय के लोगों को कैसे ईसाई में बदल दिया, इस पर गम्भीरता से विचार करने की जरूरत है।

आज भी नागा समुदाय, अगर अपने इतिहास में जाता है, या जाना चाहता है तो उसको इतना तो अवश्य लगता है कि उसके साथ छल किया गया है। एक नागा युवक जो जेमि नागा समुदाय से था, मुझसे कह रहा था: "मिश्रा सर, हम लोग कुछ ही नागा हैं, जो अभी तक ईसाई नहीं बने हैं। अब हम कभी भी ईसाई नहीं बनेगें। आप को बता दूँ कि जनजातियों में धर्म परिवर्तन का कार्य बुद्धिस्ट लोगों ने भी किया। उन्होंने आदिवासियों को अपने साथ जोड़ने के लिए, अपने धर्म में परिवर्तन भी किया। उन्होंने

आदिवासियों से कह दिया कि आप लोग अपने देवी-देवता, अनुष्ठान, विधि-विधान का पालन करते रहिये। सभी कुछ करते हुए आप बुद्धिस्ट बन जाइए। काश ईसाई धर्म के लोगों ने भी ऐसा किया होता, तो हम लोग अपनी परम्पराओं से विमुख नहीं होते। आज ईसाई धर्म के प्रति लोगों में आक्रोश नहीं होता। इसको समझने की आवश्यकता है।"

मैंने कहा: "आप सही कह रहे हो, फिर आप लोग इसका समाधान क्यों नहीं ढूंढते हैं?"

नागा युवक कहने लगा: "यहाँ एक समस्या है सर। अब राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के लोग इस क्षेत्र में गम्भीरता से काम करने लगे हैं। वे नागा अथवा किसी भी जनजातीय समुदाय को अपने मूल आदिवासी धर्म और परंपरा में रहने के लिए उत्साहित करते हैं। इतना ही नहीं, जो लोग ईसाई बन चुके हैं, उन्हें फिर से अपने मूल धर्म में लाना चाहते हैं। यह सब कार्य बलपूर्वक नहीं, अपितु समझाकर किया जाता है। उनका विरोध ईसाई मिशनरी के लोग, अन्य लोगों को बरगलाकर करते हैं। सर यह भी बता दूँ कि नागा अथवा अन्य जनजातीय समुदाय को फिर से अपने मूल धर्म और परम्परा में लाने का आन्दोलन आज का नहीं है। इसका प्रारम्भ अंग्रेजों के रहते ही शुरू हो गया था। रानी ग़ैदिनल्यू ने तो मात्र तेरह वर्ष की अवस्था में 1927 ईस्वी में यह बिगुल बजा दिया था।"

मैंने अब तक रानी ग़ैदिनल्यू के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त कर ली थी। यह घटना, मैं आपको बताता चलूँ कि नार्थ कछार हिल्स के जिला केंद्र हाफलोंग की है। रानी ग़ैदिनल्यू के बारे में मणिपुर और नागालैंड के लोगों ने मुझे बताया था। यद्यपि लोग,

उनको अपनी-अपनी नजरिये से समझ रहे थे और मुझे समझाना भी चाह रहे थे। मेरे लिए रानी ग़ैदिनल्यू के बारे में, किसी एक निर्णय पर तुरंत पहुंचना संभव नहीं था। एथनोग्राफी का धर्म यह कहता है कि जिस विषय पर लोगों के अलग-अलग मंतव्य रहे हों, उस पर अधिक दिन तक रहकर सभी तरह के लोगों से मिलकर, सभी के मंतव्य सुनकर, समझकर, उन पर गम्भीरता से विचार कर ही निर्णय लेना चाहिए। आप इन विषयों पर, तुरंत निर्णय नहीं ले सकते। ऐसा करना, अपने विषय के प्रशिक्षण और अनुभव के विपरीत है। फिर, आप शक के कटघरे में शामिल हो जायेंगे। इसीलिए रानी ग़ैदिनल्यू पर अधिक से अधिक लोगों को सुनना, समझना और नागालैंड, मणिपुर, असम कम से कम तीनों जगह के नागा और अन्य आदिवासियों से जानकारी प्राप्त करना, अनिवार्य था। मैं यही कर रहा था ।

हम शाम को, हम लोग एक जगह गये, जहाँ पर रानी ग़ैदिनल्यू की मूर्ती, एक चौराहे पर लगी थी। उसमें रानी का नाम, उनका जन्म और अवसान तिथि एवं उनके बारे में संक्षिप्त जानकारी प्रदान किया गया था। लोग, उस जगह आकर विनम्रता से रानी ग़ैदिनल्यू के प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित करते थे। रानी ग़ैदिनल्यू को किसी स्थापित देवी से कम सम्मान नहीं प्राप्त था। सभी लोग, चाहे कोई भी जनजातीय समुदाय के हों, उनका सम्मान कर रहे थे। यह मेरे लिए उत्साह का विषय था। मुझे लगा कि रानी ग़ैदिनल्यू के बारे में, यहाँ के लोग, हमें बहुत कुछ बता सकते हैं। यद्यपि, रानी ग़ैदिनल्यू, मूल रूप से, मणिपुर की रहने वाली थीं। नार्थ कछार हिल्स मणिपुर और नागालैंड दोनों को जोड़ने वाला क्षेत्र है।

नागाओं के तीन समूह जेमि नागा, काबुई नागा (रोंगमई) और रियांग नागा को मिलाकर जिलियांगरोंग नाम दिया गया। रानी ग़ैदिनल्यू का जन्म मणिपुर के तामेंगलोंग ज़िले के लोंग्काओ गाँव में 26 जनवरी 1915 ई में हुआ था। वे अपने माता-पिता की आठ संतानों में पांचवीं संतान थी। बाल्यकाल से ही, रानी गाइदिनल्यू अलग उर्जा से परिपूर्ण थी। उनमें संस्कृति संरक्षण और नागा संस्कार के संरक्षण के अपूर्व गुण थे।

रानी ग़ैदिनल्यू का एक चचेरा भाई था, हाईपू जदोनांग। वह नागा को अपने वास्तविक स्वरुप में देखना चाहता था। उसको लगता था कि ब्रिटिश हुकूमत और ईसाई मिशनरी नागा समाज को बरबाद कर रहे हैं। नागाओं के गाँव-के-गाँव जलाये जा रहे थे। लोगों को जान से मार दिया जा रहा था। नागा समुदाय की कलाकृतियों को जलाकर बरबाद किया जा रहा था। उनके धर्म, उनकी मान्यता को, उनके अनुष्ठान को असभ्य, हिंसक कहकर उनका माखौल उड़ाया जा रहा था। ऐसे में मणिपुर और नार्थ कछार हिल्स के अगल-बगल में रहनेवाले जिलियांगरोंग नागाओं का एक देशभक्त समूह ने एकता बनाकर अंग्रजी हुकूमत और ईसाई द्वारा धर्मान्तरण को रोकने के लिए एक आन्दोलन शुरू किया, जिसका नाम हेराका रखा गया। हेराका आंदोलन का लक्ष्य प्राचीन नागा धार्मिक मान्यताओं की बहाली करना और पुनर्जीवन प्रदान करना था। इस आंदोलन का स्वरूप, आरंभ में, धार्मिक था, किंतु धीरे-विरुद्ध के अंग्रेजों हुए करते ग्रहण स्वरूप राजनीतिक उसने ,धीरे मोर्चा खोल दिया। इस आंदोलन के दौरान, मणिपुर, नागालैंड और

असम के नागा बहुल क्षेत्रों से अंग्रेजों को बाहर खदेड़ना शुरू किया गया।

जैसाकि हमने पहले ही बताया था, उस आन्दोलन को शुरू करने वाला नागा का नाम था हाईपू जदोनांग। अपने चचेरे भाई हाईपू जदोनांग के साथ छोटी-सी रानी ग़ैदिनल्यू बैठकर, उसके योजना और विचार को गम्भीरता से सुनती रहती। हाईपू जदोनांग को भी अपनी मतवाली बहन ग़ैदिनल्यू की दखलंदाजी बहुत पसंद थी। वह अपनी बहन रानी ग़ैदिनल्यू को अपनी तमाम योजनाओं को बताता। किस तरह से, अंग्रेजी उपनिवेशवाद को ख़त्म करना है, यह समझाता। यह भी बताता कि धर्मान्तरण करके ईसाई मिशनारियां नागा संस्कृति को जड़ से ख़त्म करने में लगीं हैं। इन दो चीजों को ख़त्म करके ही नागा समाज के लोग अपना-अलग अस्तित्व के साथ अलग नागा प्रदेश में सम्मान और शांति से रह सकते हैं। लेकिन, इस सम्मानजनक शांति के लिए क्रान्ति जरूरी था।

खैर, हाईपू जदोनांग अपनी करिश्माई भाषण से जिलियांगरोंग नागाओं में अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए मर-मिटने का ज़ज्बा भर रहा था। वह अपनी योजना को फुलप्रूफ बनाकर चलता था। वह 100 प्रतिशत में जीना चाहता था, उसके लिए 99 प्रतिशत होना कोई मायने नहीं रखता था। और उस जज्बे में, उसका साथ देनेवाली मिल गयी थी, उसकी चचेरी बहन रानी ग़ैदिनल्यू। फिर क्या था, हजारों की संख्या में लोग मर मिटने के लिए तैयार हो गए। लोग, हाईपू जदोनांग की एक झलक पाने के लिए बेचैन रहने लगे। अंग्रेज अधिकारी, अब उसके पीछे पड़ गए और अंततः 29

अगस्त, 1931 को उसे गिरफ्तार कर लिया गया। कुछ ही दिनों में उसको फांसी पर भी चढ़ा दिया गया।

लगता था, जैसे हाईपू जदोनांग को मालूम हो गया था कि वह जल्दी ही फंसी पर चढ़ जायेगा। इसीलिए, उसने रानी ग़ैदिनल्यू को अपना उत्तराधिकारी चुन लिया था। अब कमान रानी ग़ैदिनल्यू के हाथों में था। लोग रानी ग़ैदिनल्यू को हाईपू जदोनांग से भी अधिक प्यार करने लगे। प्रेम से रानी को रानी माँ कहकर पुकारने लगे। रानी एक विद्रोही नेता के रूप में उभरने लगी। उनके धार्मिक कृत्यों में भी लोगों ने एक राजनीति का आधार देखना शुरू किया। जनजातियों में रानी ग़ैदिनल्यू ने गजब की चेतना ला दी। धरमांतरण की गति को तो मानो रोक ही दिया। लोग रानी में इश्वर का स्वरुप देखने लगे। अंग्रेजों ने उस पर निगरानी शुरू कर दी। अनेक नागा गांवों को जलाकर राख कर दिया गया। निर्दोष लोगों को गोली से भून दिया गया। फिर भी लोग रानी के साथ थे। उनका मनोबल बढ़ा हुआ था। अंततः 17 अप्रैल, 1932 में एक मुठभेड़ में रानी ग़ैदिनल्यू को गिरफ्तार कर लिया गया। कहना यह भी जरुरी है कि रानी ग़ैदिनल्यू गाँधी और सुभाषचंद्र बोस के बीच की कड़ी थीं। वह दोनों के संतुलित समावेश के साथ चलना चाहती थी। रानी में छत्रपति शिवाजी की तरह गुरिल्ला युद्ध करने का भी कौशल था। और तो और रानी ने अंग्रेजों से लड़ने के लिए, अपनी सेना में लोगों को गोली चलाना, तीर धनुष चलाना और भी अनेक करतब का प्रशिक्षण देने लगी। उनके रणबांकुरे युद्ध में सदैव अपना युद्ध कौशल प्रदर्शित करने के लिए तैयार रहते थे। युद्ध को युद्ध की तरह लड़ने के लिए रानी ग़ैदिनल्यू ने एक अभेद्य किला का भी निर्माण

शुरू कर दिया था। दुर्भाग्य से किला बनाने के पूर्व ही, उनको एक मुठभेड़ के दौरान गिरफ्तार कर लिया गया। रानी ग़ैदिनल्यू पर अपराधिक मुकदमा चला और उन्हें आजीवन कारावास की सजा मिली।

1932 से लेकर भारत की आजादी मिलने तक अर्थात् 1947 तक रानी ग़ैदिनल्यू जेल में रही। बाद में, भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरु के पहल पर उन्हें जेल से रिहा किया गया। जेल में रहने के बाद भी, उनका यश कम नहीं हुआ। आजादी के बाद भी, रानी ग़ैदिनल्यू अखंड भारत के अंदर नागा संस्कार, संस्कृति, अनुष्ठान के सतत् संरक्षण और संवर्धन के लिए कार्य करती रहीं। अलगाववादी गुट, चाहे मणिपुर का हो, नागालैंड का हो अथवा असम का हो, का उन्होंने विरोध किया। यद्यपि 1960 अलगाववादी गुटों ने उनका विरोध किया। अब वह अंडरग्राउंड हो गयीं। यह भी एक नितांत जरुरी जानकारी है कि रानी ग़ैदिनल्यू ने सबसे अधिक सुरक्षित जगह, नार्थ कछार हिल्स को अपने अज्ञातवास के लिए चुना। नार्थ कचार हिल्स के लोगों ने रानी को बहुत प्यार और आदर दिया।

रानी ग़ैदिनल्यू को 1972 में "ताम्रपत्र स्वतंत्रता सेनानी पुरस्कार", 1982 में "पद्म भूषण" पुरस्कार, और 1983 में "विवेकानंद सेवा पुरस्कार" से नवाजा गया। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने 24 अगस्त, 2015 को रानी ग़ैदिनल्यू के जन्म शताब्दी समारोह का शुभारम्भ किया। अगर रानी ग़ैदिनल्यू के कार्य, उनका धैर्य, युद्ध कौशल, नागा संस्कृति और स्पिरिट के प्रति समर्पण देखेंगे, लोगों का उनके प्रति सम्मान और स्नेह देखेंगे, तो आपको वे

किसी भी अर्थ में रानी लक्ष्मीबाई, या किसी भी स्वतंत्रता सेनानी से कम नहीं हैं। उनके लिए, भारत रत्न भी कम है। सरकार को इस दिशा में सोचने की जरूरत है।

मै घूमता जा रहा था और पल-पल से रानी ग़ैदिनल्यू के बारे में लोग बता रहे थे। एक जेमि नागा जनजाति के गाँव में गया। लोग रानी ग़ैदिनल्यू की बात करने लगे। वहाँ एक महिला मिली। नागा महिला थी। वहाँ के जेमि नागा अभी भी ईसाई नहीं बने हैं। उन्हें अपने धर्म, आस्था, परम्परा, अनुष्ठान पर गर्व है। उन्हें नागा होने का गौरव है। वे आजकल राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से भी प्रभावित हैं।

मैंने एक महिला से पूछा: "क्या संघ के लोग आपको हिन्दू धर्म में दीक्षित होने के लिए ज़िद, निवेदन या कोई प्रभाव डालते हैं?"

वह बोली: "नहीं सर। वे कहते हैं कि आपको जो अपना धर्म है, उसी में रहो। यही आपका सनातन धर्म है। हिन्दू धर्म आपको मान्यता देता है। आप अपने संस्कार या मत बदलो। हाँ, वे घर के आगे एक तुलसी का पौधा लगाने के लिए कहते हैं। उनका यह भी कहना है कि अगर हो सके, तो गोमांस मत खाओ।" हम लोगों ने गोमांस खाना छोड़ दिया है।"

वो महिला बोलती रही और मैं सुनता रहा। कुछ देर रूककर वह फिर बोलने लगी: "सर एक बात बताऊँ, रानी ग़ैदिनल्यू अभी भी मरी नहीं हैं। वे हमारे कर्मों की साक्षी हैं। अभी भी, वे हमारे जीवन को सपना में आकर नियंत्रित करती हैं। हमने हेराका को छोड़ा नहीं हैं। अब हम लोग, हरेक गाँव में महिलाओं का हेराका समूह बनाया है। सभी महिलायें उसका सदस्य बनती हैं। हम लोग महिलाओं को पढ़ाना सिखाते हैं। अपनी संस्कृति और संस्कार के बारे में

जानकारी देते हैं। पुरुष बाहर का दारू ना पिए, इसके लिए नियम बनाते हैं। फिर अनेक गाँव की महिला मिलकर एक जगह मिलती हैं। सभी नियंत्रण महिलाओं का होता है। पुरुष स्थानीय रात्रि विश्राम शिविर बनाने में महिलाओं को मदद करते हैं। हम एक नियमित जीवन जीने लगे हैं। महिलायें स्वयंसिद्धा समूह बना रहीं हैं। हम संस्कृति के रक्षक हैं। हम अपनी आजादी का मूल्य समझ रहे हैं। हमारा कदम महत्वपूर्ण है क्योंकि हम विकसित हो रहे हैं। पुरुष भी अब हमारा साथ देने लगे हैं।"

इस नागा महिला ने इतना तो अवश्य बता दिया कि अगर जैसा रानी ग़ैदिनल्यू चाहती थी, उस तरह से नागा को अपने सांस्कृतिक धरोहर को और अपने परंपरागत धर्म को सुरक्षित और संरक्षित करने का अवसर दिया जाता, तो आज नागा अलगाववाद का कहीं नामोनिशान नहीं होता। नागा जीवन के अनेक पक्षों पर सोचने की जरूरत है। उनकी समस्या को, उनके ह्रदय में घुसकर, उनके समान सोचना है। एक-एक परत को समझना है। यह रास्ता कठिन अवश्य है, परन्तु समाधान भी यहीं है।

*****